प्रेम के रंग अनेक

ओशो के श्री चरणों में समर्पित

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा
131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

भूमिका

प्रेम क्या है? हजारों वर्षों से इसका उत्तर खोजा जा रहा है। असंख्य विचारकों, मनीषियों ने प्रेम की ढेरों व्याख्याएं की हैं। लाखों पन्ने भर दिए हैं लिख-लिख कर। जिसने भी कलम चलाई, प्रेम पर अवश्य कुछ न कुछ लिखा है। प्रेम को अनेक रूपों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। कभी गीत गाकर, कभी कहानियां लिखकर, कभी नाटक और कभी फिल्म दिखाकर। क्या अभिनेताओं को प्रेम का अनुभव होता है? एक सुप्रसिद्ध फिल्मी गायिका ने हजारों प्रेम गीत गाए हैं। उनके गीत सुनकर करोड़ों लोगों ने प्रेम किया है। किन्तु उन देवीजी ने किसी से प्रेम नहीं किया। आवश्यक नहीं है कि सभी कवियों, कहानीकारों और नाटककारों को प्रेम का अनुभव हुआ हो। प्रगाढ़ कल्पना में जाकर किसी भी भाव की अभिव्यक्ति की जा सकती है।

चारों तरफ से आवाजें आती हैं कि हम प्रेम करते हैं। पिता पुत्र को प्रेम करता है, पुत्र पिता को, पति पत्नी को और पत्नी पति को प्रेम करती है। दोस्त दोस्त को प्रेम करते हैं। किन्तु फिर भी दुनिया में घृणा का सर्वत्र विस्फोट होता है। प्रेम के कहीं दर्शन नहीं होते।

हर आदमी को आदमी से प्यार हो गया

हर आदमी लगता है अदाकार हो गया।

हर तरफ चर्चा होती है प्रेम की। किन्तु प्रकट होती है घृणा। परमगुरु ओशो कहते हैं कि हर आदमी एक दूसरे के सामने भीख का कटोरा लिए खड़ा है और प्रेम मांग रहा है। जो स्वयं ही भिखारी है, भला वह दूसरे को क्या देगा? प्रेम क्या है? .....इसका सही उत्तर वही दे सकता है जो स्वयं प्रेममय हो चुका हो। जो स्वयं प्रेम का मूर्त रूप हो चुका हो। ओशो के अनुज, ओशो शैलेन्द्र जी प्रेम के ही साक्षात् स्वरूप हैं। उनकी आंखों से ही नहीं, उनके रोम-रोम से प्रेम झरता है। यद्यपि अनुभूत प्रेम को शब्दों में ढाल पाना सबसे कठिन काम है, फिर भी संबुद्ध सद्गुरु ने वह प्रयास किया है और वह भी प्रश्नोत्तर के रूप में। जिज्ञासुओं ने उनसे आमने-सामने बैठकर ढेरों प्रश्न किए हैं और उन्होंने बड़े सहज एवं सरल भाव से उनके उत्तर दिए हैं। गहन और गंभीर विषय को भी उन्होंने अपनी चुटीली भाषा, कहानियों, कविताओं और व्यंग्यात्मक चुटकुलों के सहारे बिलकुल सरल और बोधगम्य बना दिया है।

वे कहते हैं कि प्रेम एक इन्द्रधनुष है। इसके कई रंग हैं। प्रेम और घृणा एक-दूसरे के विपरीत नहीं बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उन्होंने इसे एक नया नाम दिया है 'प्रेमघृणा' अर्थात् 'लवहेट'। बस दोनों में डिग्री का, प्रतिशत का अंतर है। प्रेम का नाम लेकर सब एक दूसरे के अहंकार का शोषण और पोषण कर रहे हैं। एक दूसरे की झूठी प्रशंसा और स्तुति करते रहते हैं। इसका अंतिम परिणाम निश्चित रूप से घृणा ही होगा।

'प्रेमं शरणं गच्छामि!' इस प्रीतिकर संबोधन पर समाप्त हाने वाले ये अनूठे प्रवचन 'प्रेम समाधि' नामक शिविर में दिए गए हैं। सारांश यह है कि साधक को जीवन ऊर्जा का न तो दमन करना है और न अति प्रदर्शन; बल्कि इसका रूपांतरण करना है। सांसारिक प्रेम को परमात्मा के प्रेम में रूपांतरित करना है। इसी को कहते हैं सकारण से अकारण प्रेम की ओर यात्रा। बेशर्त प्रेम परमात्मा से ही हो सकता है। यह प्रेम हमें अहंकार से ओंकार की तरफ ले जाता है। सांसारिक दृष्टि से तो परमात्मा अनुपयोगी है। उसके प्रेम में डूब जाना ही वास्तविक प्रेम है। यही ऊर्ध्वगमन की दिशा है। बहिर्गामी से अंतर्गामी और अंतर्गामी से अनागामी प्रेम।

भक्ति के संबंध में बोलते हुए एक प्रश्न के उत्तर में ओशो शैलेन्द्र जी कहते हैं कि कुछ लोग सगुण प्रेम में उलझे हैं और कुछ निर्गुण प्रेम में। सगुण प्रेमी मूर्ति पूजा, मंदिर, तीर्थ आदि क्रिया-कांडों में फंस गए हैं और निर्गुण प्रेमी शून्य की खोज में रूखे-सूखे, उदास, त्यागी-तपस्वी बनकर उत्सव-विहीन हो गए हैं। वे कहते हैं कि इन दोनों अतियों से बचना चाहिए। मध्य का मार्ग है न सगुण, न निर्गुण, बल्कि सूक्ष्म गुण। अर्थात् ओंकार नाद में डूबना, भीतर के दिव्य प्रकाश, दिव्य ऊर्जा और दिव्य खुमारी का आनन्द लेना।

सक्रिय प्रेम हिंसक होता है। वह दूसरे पर आक्रमण करता है। निष्क्रिय प्रेम ग्राहक होता है, रिसेप्टिव होता है। सब तरफ से प्रेम की तरंगें तुम्हारी तरफ आ रही हैं। क्योंकि तुम जगत का केन्द्र हो। तुम बस ग्रहण करने वाले बन जाओ। भाव करो कि प्रेम और ऊर्जा की तरंगें तुम्हारे भीतर समा रही हैं- उन्हें अपनी चेतना तक जाने दो। आक्रमण नहीं, प्रतिक्रमण होने दो। आत्मतल से गुजरकर वे तरंगें परमात्मतल पर पहुँच जाएंगी।

जगत का प्रेम तो एक दिन टूटेगा और उसे टूटना ही चाहिए। ऐसे ही जैसे अंडा टूटे तो उसमें से पक्षी निकलता है या कि बीज गलने पर वृक्ष बनता है। ऐसे ही एक दिन सांसारिक प्रेम के प्रस्फुटन से परमात्मा का प्रेम फूटेगा। लौकिक प्रेम, अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाएगा। किन्तु इसकी शुरुआत लौकिक प्रेम से ही होगी। यह लोक भी उसी परमात्मा-प्रदत्त जीवन ऊर्जा से ओत-प्रोत है। हमें इस जीवन ऊर्जा को सृजनात्मक कार्यों में लगाना है। और सृजनात्मकता में अहंकार समाप्त हो जाता है क्योंकि क्षुद्र मानव की सृजनशीलता सबसे बड़े सर्जक परमात्मा में ही विलीन हो जाती है। प्रेम की प्रतिमूर्ति ओशो शैलेन्द्र जी ने इसी ऊर्ध्वगामी अलौकिक प्रेम की चर्चा इस पुस्तक में विस्तृत रूप से की है। लीजिए पढ़िए और प्रेम की रसधार में डुबकी लगाइए।

-ओशो मस्तो, संपादक-'ओशो टुडे' पत्रिका

अनुक्रम

1.	प्रेम का इंद्रधनुष	7
2.	प्रेम यानी अहंकार की मृत्यु	16
3.	प्रेम के अनेक रंग	29
4.	प्रेम, प्रेम और प्रेम में भेद	39
5.	प्रेम की विफलता	49
6.	लौकिक से अलौकिक प्रेम की ओर	63
7.	प्रेम में दर्द क्यों?	73
8.	होश और प्रेम के दो पंख	83
9.	अहम्-मुक्त हो प्रेम से भरें	95
10.	प्रेम का शिखर है भक्ति!	105
11.	प्रेम क्या है?- विरला जाने कोय	122
12.	प्रेम में श्वास लेना	123
13.	नए साधकों के कार्यक्रमों में आमंत्रण	124

अध्याय एक

प्रेम का इंद्रधनुष

प्रश्नसार–

1. प्रेम और घृणा का आपस में नाता
2. एक हाथ की ताली और अकारण प्रेम

प्रश्न—'प्रेम का नाता' क्या होता है? प्रेम और घृणा का आपस में क्या नाता है?

मा अंतर्वीणा, प्रेम और घृणा के बीच वही नाता है जो जन्म और मृत्यु के बीच में है, जो धूप-छाया के बीच में है। जो दिन और रात के बीच में; अमृत और जहर, ठंडक और गर्मी के बीच में है। लेकिन मेरी बात को गलत मत समझना। जब मैं कह रहा हूं अमृत और जहर, तो मैं दो विपरीत तत्वों की बात नहीं कर रहा हूं। एक ही सिक्के के दो पहलुओं की बात कर रहा हूं। जन्म एक पहलू है, मृत्यु उसी का दूसरा पहलू। जिसे तुम प्रेम का नाता कहते हो सामान्य भाषा में, वह घृणा का ही एक रूप है। कम घृणा को हम प्रेम कहते हैं। थोड़े कम प्रेम को हम घृणा कहते हैं। उनमें कुछ खास भेद नहीं है। 'प्रेमघृणा'-अच्छा हो हम एक नया शब्द बना लें, इकट्ठा। अंग्रेजी में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने उपयोग करना शुरू कर दिया है। वे कहते हैं 'लवहेट'। एक ही शब्द, लव और हेट के बीच में हाईफन (-), जोड़ने वाला चिह्न, भी नहीं है—लवहेट, बस एक शब्द।

वास्तविकता यही है। हम जिसे सामान्यत: प्रेम का नाता कहते हैं, वह घृणा का थोड़ा विरल रूप है। थोड़ी कम घृणा हम जिसको करते हैं उससे हम कहते हैं तुमसे बड़ा प्रेम है। जब घृणा की मात्रा थोड़ी सघन हो जाती है, तब प्रेम की मात्रा कुछ कम हो जाती है। जीवन में सभी चीजों को परिमाण की भाषा में सोचो- डिग्रीज की, प्रतिशत की, मात्रा की। इसलिए, जिसे हम प्रेम करते हैं उसे ही साथ-साथ घृणा भी करते हैं। हाँ, कभी प्रेम पर हमारा एम्फैसिस होता है, कभी हमारा एम्फैसिस घृणा पर होता है। और वे दोनों आपस में परिवर्तनशील हैं, बदलते रहते हैं।

जब मैं कहता हूं आपस का संबंध अमृत और जहर जैसा है, तो यह नहीं सोचना कि मैं कह रहा हूं कि दोनों आपस में एक-दूसरे के विपरीत हैं। अगर अमृत भी कोई बहुत मात्रा में पी ले तो वह जहर साबित हो जाएगा। और जहर भी ठीक खुराक में, ठीक स्थिति में लिया लाए तो अमृत का काम करता है। इतनी औषधियां हैं, ये दवाइयां कहाँ से आती हैं? ये सब बड़ी जहरीली चीजें हैं। लेकिन ठीक परिस्थिति में, उचित बीमारी में, सम्यक् डोज़ में लेने पर, वही जहर

औषधि का कार्य करता है, अमृतस्वरूप हो जाता है। अत: अमृत एवं विष में कोई गुणात्मक भेद नहीं है। गुण उनके एक से ही हैं। केवल परिमाण की वजह से उत्पन्न परिणाम का भेद है, मात्रा का अंतर अलग-अलग प्रभाव पैदा करता है। जो एक-एक गोली दिन में तीन बार खानी है, यदि उसकी पचास-पचास गोली दिन भर में दस बार खा ली जाए तो बीमारी दूर करने के बजाय वह नई बीमारी अथवा मृत्यु का भी कारण बन सकती है। तुम कहोगे दवाई तो अमृत होती है, मगर इसे खाने से तो रोग की जगह रोगी खत्म हो जाता है!

जीवन में हम चीजों को द्वंद्व में तोड़कर देखते हैं, और चीजें टूटी हुई नहीं हैं। थोड़े से भेद में बहुत बड़ा भेद पड़ जाता है। क्योंकि गुणात्मक भेद, मात्रात्मक भेद से जन्म जाता है। तो सामान्यत: जिसे हम प्रेम कहते हैं और जिसे घृणा कहते हैं वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बड़ी कठिन लगती है यह बात... लेकिन जिन्दगी ऐसी ही रहस्यपूर्ण है। एक अबूझ पहेली है। यहाँ असंभव घटित होता है। 'फैक्ट इज़ मोर मिस्टीरियस दैन फिक्शन'।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी से परेशान होकर एक रात आत्महत्या करने की सोची। बाजार से जहर खरीदकर लाया। उसने जहर खा लिया, पत्र लिखकर रख दिया कि मैं मर रहा हूं। पत्नी सुबह छ: बजे उठी, स्कूल के लिए बच्चों को तैयार करने लगी, उसने पत्र खोलकर देखा। छाती पीटकर रोने लगी। उसका रोना-धोना सुनकर नसरुद्दीन उठकर बैठ गया। वह मरा ही नहीं था, जिन्दा था अभी।

भारतीय मिलावटी जहर खाकर इतनी आसानी से कहीं कोई मरता है!

पत्नी बहुत खुश हुई कि मेरे पतिदेव मरे नहीं। उसने पूरे मोहल्ले में घोषणा कर दी कि मिठाई बांटूंगी, प्रसाद बांटूंगी। मिठाई खरीद लाई। शहर की सबसे महंगी शुद्ध मिठाई की दुकान से बढ़िया मिठाई लाई। पूरे मोहल्ले में उसने मिठाई बांटी। खुद भी खाई, बच्चों को खिलाई, नसरुद्दीन को भी खिलाई। बहुत खुश थी कि मेरे पति बच गए। लेकिन वह मिठाई खाकर नसरुद्दीन मर गया, पत्नी भी मर गई, मोहल्ले-पड़ोस के बेचारे बीस लोग और बच्चे भी फुड प्वाइजनिंग से मर गए। शुद्ध भारतीय मिठाई! यहाँ विष पीकर नहीं मरते... मिठाई खाकर मर जाते

हैं लोग! मीराबाई की कहानी है न–विषपान करके भी नाचती रहीं। धन्यवाद दो मिलावटी भारतीय संस्कृति को!! सुकरात की तरह यूनान में जहर पीती तो बेचारी तुरंत मर जाती।

जीवन में सब चीजें बहुत मिश्रित हैं। यहाँ कहना मुश्किल है कि कौन सी चीज पोषक निकलेगी और कौन सी चीज शोषक साबित होगी? विष और अमृत में भेद विपरीत का नहीं है, भेद मात्रा का है।

इस मिश्रण वाली बात को समझो। इसको न समझने से बड़ी उलझन पैदा होती है। लगता है कि मैं अपनी पत्नी को प्रेम करता हूं और साथ ही साथ, भीतर ही भीतर घृणा भी करता हूं। और बार-बार वह घृणा क्रोध के रूप में, कभी हिंसा के रूप में, कभी ईर्ष्या के रूप में प्रकट होती है। पत्नी सोचती है मैं अपने पति को इतना चाहती हूं लेकिन आश्चर्य..... कभी-कभी मैं क्यों हिंसात्मक व्यवहार करती हूं? क्योंकि इन दोनों में कुछ विपरीतता नहीं है। एक ही चीज की कम-ज्यादा मात्रा है। कभी एक पहलू सिक्के का सामने होता है, कभी दूसरा पहलू सामने आ जाता है। सिक्का पूरा का पूरा मौजूद है; उसमें दोनों द्वंद्व इकट्ठे समाहित हैं। आम तौर से जिसे तुम प्रेम कहते हो वह सिक्के का मात्र एक पहलू है। पीछे छुपा है, दूसरा पहलू।

पारस्परिक अहंकार का शोषण और पोषण सामान्य प्रेम है।

प्राय: जिसे हम कहते हैं प्रेम का संबंध, वह परस्पर एक-दूसरे के अहंकार का पोषण है। हम पुष्ट करते हैं एक-दूसरे के अहंकार को। प्रशंसा करते हैं कि तुम बहुत सुंदर हो, तारीफ करते हैं कि कितने ज्ञानवान हो, कि तुम्हारे जैसा कोई व्यक्ति कभी देखा ही नहीं, लाखों में एक। दूसरा व्यक्ति महसूस करता है कि वह बहुत प्रेम पा रहा है। बदले में वह भी तुम्हारे अहंकार की तारीफ करता है। पारस्परिक अहंकार का पोषण चलता है। और इस पोषण के साथ ही जुड़ा हुआ है शोषण। ये प्रशंसा के पुल यूं ही नहीं बांधे जा रहे हैं। ये स्तुति के गीत मुफ्त में नहीं सुनाए जा रहे हैं। इसके बदले में कुछ हासिल किया जाएगा। यह तारीफ, ये कविताएं, ये गीत मुफ्त नहीं हैं। इनकी कीमत चुकानी पड़ेगी। और यह खेल परस्पर चल रहा है। दोनों व्यक्ति एक-सा ही काम कर रहे हैं। एक-दूसरे के

अहंकार को पुष्ट कर रहे हैं। तो सामान्यतः हम जिसे प्रेम कहते हैं वह अहंकार का पोषण है। और उसके पीछे छुपा हुआ है एक दूसरे का शोषण। इसलिए जल्दी ही वह घृणा में बदल जाता है। कभी प्रेम वाला पक्ष उजागर होता है, फिर कहीं घृणा वाला पक्ष सामने आ जाता है। और दिन-रात की तरह वह डोलते रहते हैं। इसलिए मैंने कहा कि प्रेम और घृणा का संबंध धूप-छाँव जैसा, दिन-रात जैसा, जहर-अमृत जैसा है।

मा अंतर्वीणा, तुम पूछती हो कि प्रेम का नाता क्या है?

प्रेम एक इंद्रधुनष है, एक पूरी रेंज है। इसको केवल दो टुकड़ों में तोड़ कर ही मत समझो। छोटे-छोटे विभाजन करो तो बात और स्पष्ट हो सकेगी। यदि इंद्रधुनष में हम चुन लें बैंगनी और लाल रंग तो लगता है एक दूसरे के विपरीत हैं। लेकिन जब हम पूरी रेंज को देखें तो सात रंग उसमें छाए हुए हैं, तब हमें पता चलता है कि ये तो एक-दूसरे में परिवर्तनशील हैं। वह बैंगनी ही नीला हो जाता है। बैंगनी और नीले में उतना भेद नहीं है। नीला और पीला के बीच में हरा है। अब बात समझ में आती है कि नीला और पीला रंग जहाँ ओवरलैप कर रहा है वह हरा बन गया। इसी प्रकार और दूसरे भी रंग हैं। पूरी रेंज को समझो तो फिर जो अल्ट्रा-वॉयलेट और इन्फ्रा-रेड है, इन्द्रधनुष के पार के रंग भी एक सीक्वेंस में, एक क्रम में दिखाई देते हैं; और एक-दूसरे में परिवर्तनशील हैं, यह बात भी समझ में आती है। फिर इनके भीतर की विपरीतता खो जाती है, और तारतम्यता प्रगट होती है।

ठीक इसी प्रकार प्रेम का नाता भी एक इंद्रधनुष है। भिन्न-भिन्न दिखाई देने वाले रंग भी एक ही श्वेत रंग से निकले हैं। जैसे सूरज की सफेद किरण, इंद्रधनुष में सात रंग की दिखाई देने लगती है, ठीक वैसे ही हमारी जीवन ऊर्जा सात रंगों में अभिव्यक्त होती है।

सबसे **पहला** समझो मोह; वस्तुओं के प्रति, मकान के प्रति, सामानों के प्रति, स्थानों के प्रति जो हमारी पकड़ है वह भी प्रेम का ही एक स्थूल रूप है। उसे हम कहते हैं मोह, अटैचमेंट। यह मेरा सामान है, यह मेरा मकान, मेरी कार, मेरा फर्नीचर, मेरे गहने; यह जो मेरे की पकड़ है वस्तुओं के ऊपर, यह सर्वाधिक

निम्न कोटि का प्रेम है। लेकिन है तो वह भी प्रेम ही। उसे इंकार नहीं किया जा सकता है कि वह प्रेम नहीं है। वह भी प्रेम है। राजनीति पद व शक्ति के प्रति प्रेम है, लोभ धन-संपत्ति के प्रति प्रेम है।

उससे ऊपर है, **दूसरे** तल पर देह का प्रेम, जो कामवासना का रूप ले लेता है। तो पहला प्रकार हुआ वस्तुओं के प्रति प्रेम जो मोह का रूप ले लेता है और दूसरे प्रकार का प्रेम हुआ देह के प्रति प्रेम जो वासना का रूप ले लेता है।

तीसरा प्रेम है विचारों का, मन का प्रेम। जिसे हम कहते हैं मैत्री भाव। यहाँ देह का सवाल नहीं है। वस्तु का भी सवाल नहीं है। मन आपस में मिल गए तो मित्रता हो जाती है। मन के तल का प्रेम, विचार के तल का प्रेम दोस्ती है।

चौथा है हृदय के तल पर, जिसे हम कहते हैं–प्रीति। सामान्यत: हम इसे ही भावनात्मक प्रेम कहते हैं। उसे यहाँ बीच में रख सकते हैं, चौथे सोपान पर; क्योंकि तीन रंग उसके नीचे हैं, तीन रंग उसके ऊपर हैं। तो चौथा है हृदय के तल पर प्रीति का भाव; अपने बराबर वालों के साथ हृदय का जो संबंध है–भाई-भाई के बीच, पति-पत्नी के बीच, पड़ोसियों के बीच। इसके दो प्रकार और हैं–अपने से छोटों के प्रति वात्सल्य भाव है, स्नेह है। अपने से बड़ों के प्रति आदर का भाव है; ये भी प्रीति के ही रूप हैं।

पांचवें प्रकार का प्रेम आत्मा के तल का प्रेम है। इसमें भी दो प्रकार हो सकते हैं। जब हमारी चेतना का प्रेम स्वकेंद्रित होता है तो उसका नाम ध्यान है। और जब हमारी चेतना परकेंद्रित होती है, उसका नाम श्रद्धा है। गुरु के प्रति प्रेम श्रद्धा बन जाता है।

चेतना के बाद **छठवें** तल का प्रेम घटता है जब हम ब्रह्म से, परमात्मा से परिचित होते हैं। वहाँ समाधि घटित होती है। वह भी प्रेम का एक रूप है। अतिशुद्ध रूप। अब वहाँ वस्तुएं न रहीं, देह न रही। विचारों के पार, भावनाओं के भी पार पहुंच गए। तो समाधि को कहें पराभक्ति, परमात्मा के प्रति अनुरक्ति।

उसके बाद अंतिम एवं **सातवां** प्रकार है–अद्वैत की अनुभूति। कबीर कहते हैं- प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समाई। जब अद्वैत घटता है तो न मैं रहा, न तू रहा; न भगवान रहा, न भक्त बचा। कोई भी न बचा। वह प्रेम की पराकाष्ठा

है। ये सात रंग हैं प्रेम के इंद्रधनुष के, ऐसा समझें।

सबसे पहला है मोह, वस्तुओं के प्रति। दूसरा सेक्स, देह के प्रति। तीसरा मैत्री, विचारों के प्रति। चौथा प्रीति, भावना के प्रति। पांचवां चैतन्य के प्रति प्रेम, जिसके दो रूप हो सकते हैं; जो लोग स्वकेंद्रित हैं वे ध्यान करेंगे, जो लोग परकेंद्रित हैं वे श्रद्धा में डूबेंगे। छठवां तल है परमात्मा के प्रति प्रेम, सर्वात्मा के प्रति प्रेम का नाम है-पराभक्ति। और सातवां है अद्वैत की अनुभूति; यह नाता नहीं, प्रेम की पराकाष्ठा है जहाँ दो नहीं बचते। यह प्रेम की अंतिम मंजिल है जहाँ द्वैत खो गया, दुई समाप्त हो गयी। इस मंजिल के पहले कहीं भी रुकना मत। शेष सब सीढ़ियां हैं। जब तक तुम मंजिल पर ही न पहुंच जाओ प्रेम की, तब तक कहीं भी मत रूकना। चलते चलना, चलते चलना, चरैवेति-चरैवेति। काम से राम तक की लंबी है यात्रा। अहम् से ब्रह्म तक का है सफर। इसमें मध्य का पड़ाव है प्रेम। अगर तुम तीन खंडों में तोड़ना चाहो तो कह सकते हो- अहम्, प्रेम, ब्रह्म। या कह लो काम, प्रेम, राम। प्रेम बीच में है। इसलिए मैंने प्रेम को चौथी सीढ़ी पर रखा उसके दोनों तरफ तीन-तीन पायदान हैं। अगर वह नीचे की तरफ गिरे तो मोह बन जाता है, कामवासना बन जाता है, दोस्ती बन जाता है। यदि वह ऊपर उठे तो ध्यान अथवा श्रद्धा बन जाता है, पराभक्ति बन जाता है और अंततः अद्वैत में ले जाता है।

प्रेम के इस पूरे इंद्रधनुष को देखो। फिर तुम्हारे सवाल को समझना आसान होगा कि प्रेम और घृणा का आपस में क्या नाता है?

जितने नीचे के तल पर आओगे उतनी ही घृणा की मात्रा बढ़ती जाएगी, प्रेम की मात्रा कम होती जाएगी। जितने ऊपर जाओगे, घृणा की मात्रा कम होती जाएगी, प्रेम की मात्रा बढ़ती जाएगी। प्रेम का शुद्धिकरण होता जाएगा। एक ही ऊर्जा का खेल है प्रेम और घृणा। सबसे निम्नतम तल पर प्रेम करीब-करीब नहीं के बराबर है, घृणा ही घृणा है। जितने ऊपर जाओगे, वहाँ पर घृणा शून्य हो जाएगी, प्रेम परिपूर्ण हो जाएगा। और बीच में जिसे हम सामान्य भाषा में प्रेम कहते हैं, वह चौथी सीढ़ी पर है, उसमें तो मिश्रण है फिफ्टी-फिफ्टी। वहाँ जहर और अमृत आपस में घुले-मिले हुए हैं। दोनों एक साथ हैं और इस पर निर्भर

करता है कि तुम स्वयं को क्या समझते हो?

क्या तुम स्वयं को देह समझते हो? तो तुम्हारा प्रेम कामवासना ही होगा। दूसरे से तुम उसी तल पर संबंधित हो पाओगे जिस तल पर तुम स्वयं को जानते हो। यदि तुम स्वयं को मन समझते हो तो तुम्हारा संबंध दोस्ती का बनेगा। यदि तुम स्वयं को हृदय मानते हो, भावनाओं के तल पर जीते हो तब तुम्हारा प्रेम मध्य में होगा। यदि तुम स्वयं को चैतन्य समझते हो कि मैं चैतन्य हूं, मैं साक्षी आत्मा हूं तब तुम्हारा दूसरे से जो प्रेम होगा वह चेतना के तल पर होगा। दूसरे में तुम वही देखते हो जो स्वयं के भीतर देख पाते हो। ऐसा नहीं हो सकता कि तुम स्वयं देह केंद्रित हो और दूसरे के भीतर की चेतना को जान पाओ। यह संभव नहीं। यदि तुम स्वयं के भीतर अपनी चेतना को महसूस करते हो तो दूसरे के भीतर भी तुम चेतना को महसूस कर पाओगे। तब तुम्हारा प्रेम उच्चतर होता चला जाएगा। जब तुम अपने भीतर भगवत्ता को जान लेते हो तब तुम सारे जगत के कण-कण में उसी भगवान को पहचानते हो। तब तुम्हारा प्रेम भक्ति बन जाता है। और एक दिन वह अद्‌भुत घटना भी घटती है जिसका नाम बुद्धत्व है। जहाँ भक्त और भगवान का द्वैत भी मिट जाता है। फिर वहाँ कोई नाता नहीं है। नाता तो दो के बीच घटता है।

एक शब्द तुमने सुना है ब्रह्मचर्य। मैं दो नये शब्द निर्मित करना चाहता हूं। ब्रह्म को जानकर जो चर्या है, वह ब्रह्मचर्य कहलाती है, तो अहम् के तल पर जो जी रहा है उसके आचरण को कहना चाहिए अहम्‌चर्य। और मध्य में जो है उसका नाम होना चाहिए प्रेमचर्य। तीन तरह के संबंध इस अस्तित्व से तुम्हारे हो सकते हैं- अहम्‌चर्य, प्रेमचर्य और ब्रह्मचर्य; और ये तीनों आपस में विपरीत नहीं हैं। ये आपस में सोपान की तरह एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। निचले पायदान से ऊपरी पायदान तक हमें जाना है। 'नाता' वाले प्रेम से 'अनाता' वाले परम-प्रेम तक ऊर्ध्वगमन करना है।

प्रश्न—ओशो ने एक प्रवचन में एक हाथ की ताली को समझाते हुए उस संदर्भ में अकारण प्रेम के बारे में चर्चा की है। कृपया हमें इसकी व्यवहारिक महत्ता समझाएं।

प्रेम में जहाँ कारण मौजूद है वहाँ व्यवसाय ज्यादा है, प्रेम कम है। जहाँ भी

कारण है वहाँ शोषण भी होगा। वहाँ पीछे ध्येय कुछ और होगा। दूसरे से कुछ पाने की आकांक्षा होगी। सच पूछो तो हम जिसे प्रेम कहते हैं उसमें भी हम स्वयं के ही सुख की तलाश करते हैं। चूंकि दूसरे के माध्यम से सुखी होना है इसलिए उसको बहलाना-फुसलाना पड़ेगा। सामान्य प्रेम केवल अहंकार केंद्रित है। दूसरे मुझे प्रेम करें तो मुझे सुख-शांति मिलेगी, ऐसा उसमें भाव छिपा है। और दूसरे तभी प्रेम करेंगे, सशर्त, जब तुम उन्हें करोगे। इसलिए मजबूरी में प्रेम का दिखावा करना पड़ता है। अन्यथा दूसरे से मिलेगा नहीं। कम से कम उसे धोखा देना पड़ेगा कि 'मैं तुम्हें कुछ दे रहा हूं' तभी उससे बदले में वापस मिलेगा।

स्थिति ऐसी है, दो भिखारी एक-दूसरे के सामने भिक्षा पात्र लिए खड़े हैं। किसी के पास देने को नहीं है, दोनों को ही चाहिए एक-दूसरे से। लेकिन दिखावा ऐसा कर रहे हैं कि हम कुछ देने वाले हैं। कम से कम अभी नहीं दे रहे तो भविष्य में कभी देंगे, चिन्ता मत करो। बहुत खजाना हमारे पास है, लुटाने ही वाले हैं। असली नीयत तो यह है कि दूसरे से कुछ प्राप्त कर लें। और दूसरा भी यही धोखा दे रहा है। बड़े मजे की बात है। उसका भिक्षा पात्र भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। वह उसको छिपाए हुए है। और वह भी दिखावा कर रहा है कि बहुत संपदा मेरे पास है। और मैं तुम्हें देने को राजी हूं। खूब धोखाधड़ी चल रही है। दो भिखारी एक-दूसरे को झांसा दे रहे हैं।

सकारण प्रेम का अर्थ हुआ कि हमारे प्रेम में कुछ हेतु या कारण है, हम किसी वजह से प्रेम कर रहे हैं और निश्चित ही उसमें स्वार्थ छिपा होगा। यह प्रेम बहुत उच्च स्तर का प्रेम नहीं हो सकता। याद रखना मैं इंकार नहीं कर रहा हूं कि यह प्रेम नहीं है। यह भी प्रेम है। लेकिन बहुत निम्न स्तर का प्रेम है। नजर उसमें लेने पर टिकी है। कुछ कारण है, कुछ हेतु है, कुछ स्वार्थ है। वास्तव में तो तुम्हें केवल स्वयं के स्वार्थ से ही मतलब है। लेकिन तुम्हारे अहंकार को जो लोग पुष्ट करेंगे, जो तुम्हारी तारीफ करेंगे तुम उन्हें अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा कर लेना चाहोगे। और इसी को तुम प्रेम समझोगे। यह प्रेम वगैरह सब सुविधा की बातें हैं। कसमे-वादे-प्यार-वफा सब बातें हैं, बातों का क्या! सिर्फ बहलावा है, फुसलावा है। प्रेम उसमें है नहीं, केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करना है और दूसरे को अगर तुम प्रेम भी देते हो तो इसलिए कि

तुम्हें उससे सुख मिलता है। अंततः तो उसमें भी स्वार्थ आ ही गया। तुम्हें चूंकि सुख मिलता है देने में, इसलिए तुम दे रहे हो, तो उसके केंद्र में स्वार्थ है ही। यह अकारण प्रेम न हुआ। यह सकारण प्रेम हुआ।

ओशो जिस प्रेम की बात कर रहे हैं एक हाथ की ताली को समझाते हुए, अब इस पृष्ठभूमि में उसे समझो। एक हाथ की ताली सुनी जाती है स्वयं के भीतर, वह परमात्मा की झंकार, ओंकार का नाद है। उससे जो प्रेम होगा, उसमें तो लेने-देने का कोई संबंध हो नहीं सकता। उसकी तो कोई उपयोगिता है नहीं। तुम परमात्मा से प्रेम किस हेतु से करोगे? वहाँ तो कोई हेतु हो नहीं सकता। भीतर गूंज रही एक हाथ की ताली, और तुम मगन होकर उसमें डूब रहे हो, सुन रहे हो। इससे क्या मिलेगा? मिल तो कुछ भी नहीं सकता। यहाँ लेने-देने का कोई सवाल ही नहीं है। यह प्रेम ही अकारण प्रेम है। इसलिए ओशो ने एक हाथ की ताली समझाते हुए अकारण प्रेम की चर्चा की। वहाँ कोई हेतु नहीं हो सकता। वहाँ कुछ प्राप्त करने को है नहीं। वहाँ कोई दूसरा तो है ही नहीं। तुम्हारी ही आत्मा के केंद्र में परमात्मा का संगीत गूंज रहा है। वह एक हाथ की ताली प्राणों के केन्द्र में मौजूद है। जो उसके प्रेम में पड़ेगा वही भक्त है।

महर्षि शांडिल्य ऐसी प्रीति को कहते हैं-पराभक्ति। और सारी भक्तियों को-मूर्ति-पूजा, प्रार्थना, अर्चना इत्यादि को शांडिल्य कहते हैं-गौणी भक्ति। 'अथातो भक्ति जिज्ञासा' नामक पुस्तक में ओशो ने खूब सुंदर तरीके से पराभक्ति को समझाया है। ओंकार से प्रीति का नाम पराभक्ति है। वह जो एक हाथ की ताली को तुम मगन होकर सुनते हो, वही है पराभक्ति। धीरे-धीरे तुम उसमें लीन होकर समाप्त हो जाओगे। एक दिन तुम नहीं बचोगे। केवल एक हाथ की ताली ही रह जाएगी। एक ओंकार सतनाम। वहाँ दो बचेंगे नहीं। तुम मिट जाओगे, तुम खो जाओगे। हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई। तो जहाँ अकारण प्रेम है वहाँ मिलने को कुछ भी नहीं है। तुम खो जाओगे, तुम मिट जाओगे। महामृत्यु घटित हो जाएगी। अहंभाव की कब्र पर ही प्रेमभाव का फूल खिलता है।

प्रेमं शरणं गच्छामि!

अध्याय दो

प्रेम यानी अहंकार की मृत्यु

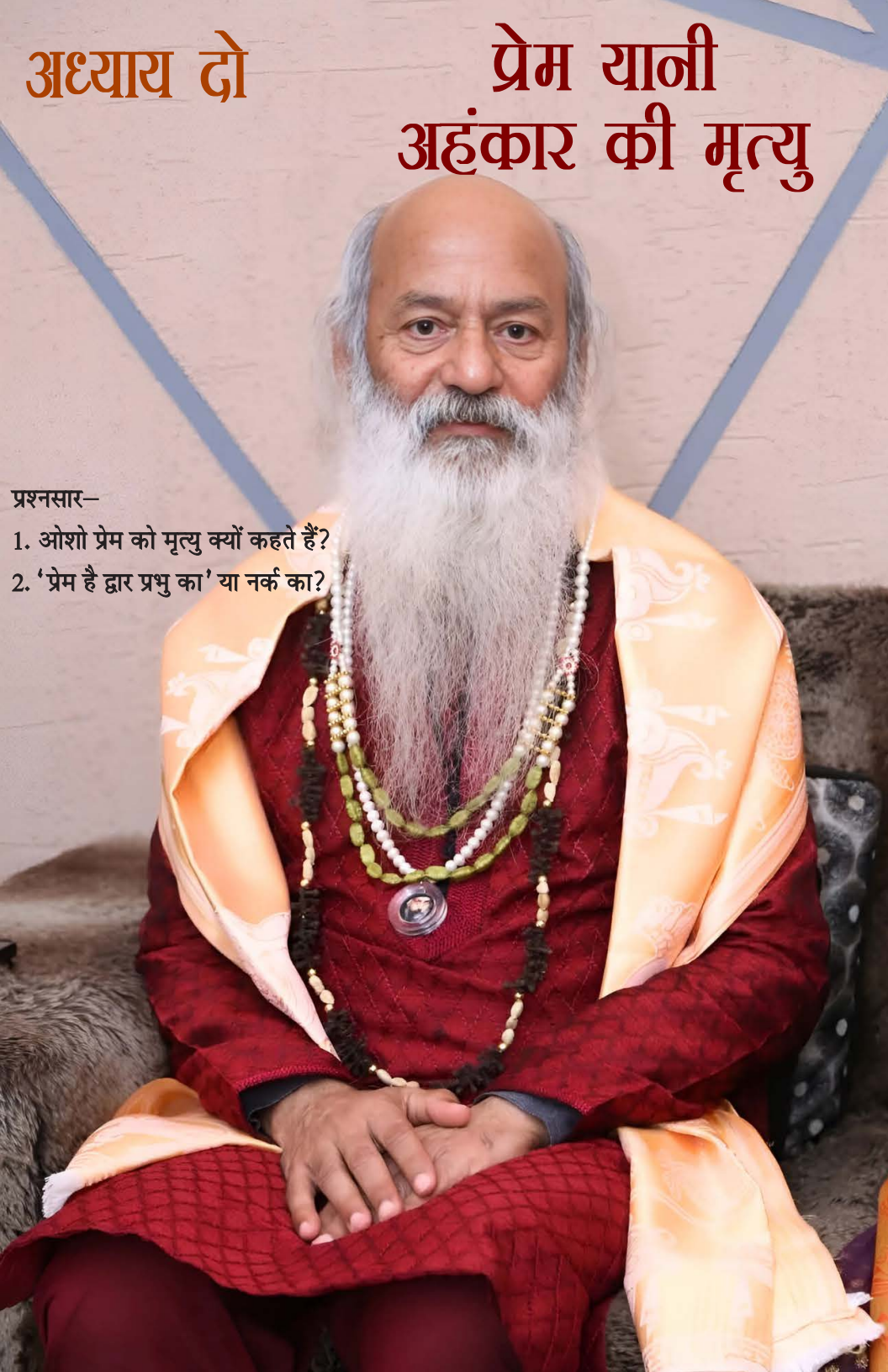

प्रश्नसार–

1. ओशो प्रेम को मृत्यु क्यों कहते हैं?
2. 'प्रेम है द्वार प्रभु का' या नर्क का?

प्रश्न—ओशो प्रेम को मृत्यु क्यों कहते हैं?

इसीलिए कहते हैं कि यह जो पराभक्ति वाला प्रेम है, यह महामृत्यु है, छोटी-मोटी मृत्यु नहीं। साधारण मृत्यु में तो केवल शरीर मरता है। फिर-फिर पुनर्जन्म हो जाता है। फिर नया शरीर मिल जाता है। लेकिन ओंकार में जाकर जो मरता है वह सदा-सदा के लिए विसर्जित हो जाता है। वही असली मृत्यु है। गोरखनाथ कहते हैं—'मरो हे जोगी मरो'। ओशो की एक किताब का नाम है, 'राम दुवारे जो मरे, बहुरि न मरना होय'। उस राम-नाम में, उस एक हाथ की ताली को सुनते-सुनते जो मरेगा, वहाँ जो खो जाएगा वह सचमुच में ही मर जाएगा। उसके भीतर अहंकार की मृत्यु हो जाएगी और केवल ब्रह्म का ओंकार नाद ही शेष रह जाएगा। इसलिए वह महामृत्यु भी है और वह परमजीवन का महाजन्म भी है। उसे जानकर ही कोई व्यक्ति द्विज होता है—दोबारा जन्मा, ट्वाइस बॉर्न। अहंकार की तरफ से देखो तो वह मृत्यु है, अहम् का मिट जाना है, और ब्रह्म की तरफ से देखो तो ब्रह्म का हो जाना है। वह पुराने की मृत्यु है और नए का जन्म भी है। लेकिन वहाँ कारण कोई भी नहीं है।

याद रखना परमात्मा की कोई उपयोगिता नहीं है। हमारा सामान्य व्यवसायी चित्त केवल यूटीलिटी की भाषा में, उपयोगिता की भाषा में सोचता है। लोग मंदिर-मस्जिद में प्रार्थना करने भी जाते हैं तो किसी लाभ के लोभ से। परमात्मा का भी कुछ उपयोग हो सकता है उनकी दृष्टि में।

लेकिन आप लोग, जो समाधि में डूब रहे हैं, आपसे यह बात स्पष्ट रूप से, खुलकर कही जा सकती है। आप इस बात को समझ सकते हैं कि परमात्मा आनंद है, परंतु उसका कोई भी उपयोग नहीं है। न कभी था, न कभी आगे संभव हो सकेगा। इसलिए परमात्मा से जो प्रेम जुड़ता है वही एकमात्र अकारण प्रेम हो सकता है—'नॉन-युटीलिटेरियन लव'। उसमें लेने-देने का कोई सवाल नहीं है। कुछ पाने की आकांक्षा नहीं हो सकती। उसमें तो मिट जाने की आकांक्षा है-

'जिस मरनी से जग डरे मेरो मन आनंद।
कब मरिहौं कब भेटिहों पूरण परमानंद।।'

सुनते हो कबीर का प्यारा वचन–वहाँ तो मिट जाना है, मर जाना है। कारण कुछ भी नहीं, वहाँ स्वार्थ कुछ भी नहीं। वहाँ तो 'स्व' का विसर्जन है। इसलिए प्रेम को मृत्यु कहा है। प्रेम की पराकाष्ठा अहम् की मृत्यु है। ब्रह्म का जन्म है। और यह बिलकुल ही उपयोगिता-शून्य है।

चीन के महान संत लाओत्से की कहानी आपने सुनी होगी। लाओत्से गुजर रहा था अपने शिष्यों के साथ एक जंगल से। जंगल में एक जगह पेड़ काटे जा रहे थे। बहुत से लकड़हारे वृक्ष काट रहे थे। लेकिन बीच में एक बड़ा पेड़ छूट गया था। लाओत्से ने अपने शिष्यों से कहा–'जाकर पूछो उन लकड़हारों से, उस वृक्ष को क्यों नहीं काटा?' वे शिष्य गए, पूछकर आए। उन्होंने बताया कि लकड़हारे कह रहे हैं कि 'उस पेड़ में कोई भी चीज काम की नहीं है। उसके पत्तों को जानवर नहीं खाते, उसकी जड़ों से कोई औषधि नहीं बनती, उसका तना बिलकुल आड़ा-तिरछा है, उसकी शाखाएं भी आड़ी-तिरछी हैं; उनका फर्नीचर भी नहीं बन सकता, उसकी लकड़ियों को जलाओ तो धुंआ बहुत होता है, आग कम पैदा होती है, वह ईंधन के भी काम का नहीं है। वह वृक्ष किसी भी उपयोग का नहीं है इसलिए उसको छोड़ दिया गया है।' लाओत्से मुस्कुराने लगा और उसने अपने शिष्यों से कहा कि यही मेरी भी शिक्षा है। तुम भी ऐसे ही हो रहो–बिलकुल निरुपयोगी।

यह बोधकथा मैंने ओशो से कई बार सुनी, और हमेशा ही मैं आश्चर्य करता था कि यह कहानी है कैसी? ओशो जो बात समझाते थे इस कहानी के माध्यम से, वह मेरी तो समझ में नहीं आती थी। बुद्धत्व के पहले मैं इस कहानी को नहीं समझ पाया। अब समझ में आती है बात कि बड़ा ही प्यारा इशारा है। बड़ा ही अद्‌भुत संकेत लाओत्से ने किया। परमात्मा बिलकुल निरुपयोगी है। उपयोगिता की बात ही तुम छोड़ दो। और जो संत हैं वे भी निरुपयोगी हैं, किसी काम के नहीं। संत किसी काम के हैं? न राजनीति करते, न दुकान चलाते, न देश में कोई योगदान देते, न विज्ञान की कोई खोज करते, कुछ भी तो नहीं करते। न बुद्ध ने कोई अस्पताल बनवाया, न महावीर ने कोई स्कूल खुलवाया, न पतंजलि ने कोढ़ियों की सेवा की, अष्टावक्र ने कुछ भी तो न किया। ये लोग

बिलकुल ही व्यर्थ, एकदम परमात्मा के समान निरुपयोगी हैं। परमात्मा में केवल वही लोग उत्सुक हो पाते हैं, जिनकी दृष्टि उपयोगितावादी नहीं रह जाती। जब तक तुम सोच रहे हो कि कुछ पा लें, कुछ हासिल कर लें, कुछ मिल जाए; तब तक तुम्हारी पूजा, प्रार्थना, ध्यान सब सकारण होंगे, तुम्हारा प्रेम भी सकारण होगा।

अकारण प्रेम केवल परमात्मा से हो सकता है। इसलिए एक हाथ की ताली के संदर्भ में ओशो ने अकारण प्रेम की चर्चा की। यह मात्र संयोग नहीं, बिलकुल उपयुक्त जगह उन्होंने चर्चा की। एक हाथ की ताली से तुम जो प्रेम करोगे वह अकारण ही हो सकता है। एक हाथ की ताली से तुम्हें क्या मिलेगा? कुछ भी मिलने वाला नहीं। और कुछ मिलने की जिसकी दृष्टि है वह प्रेम कर ही नहीं पाएगा। सुरति समाधि में बहुत लोग मुझे कहते हैं कि समाधि में हम डूब नहीं पाते। ओंकार के नाद में गहराई नहीं मिल पाती। उसका कारण सिर्फ इतना है कि तुम्हारा प्रेम सकारण है। यदि कहीं से कुछ मिलता होता या तुम्हें आशा भी होती कि कुछ मिल जाएगा तो तुम जरूर प्रेम करते। तुम सकारण प्रेम के आदी हो। जहाँ से तुम्हें कुछ भी न मिलेगा और उल्टा जहाँ तुम ही खो जाओगे, एक दिन समाप्त हो जाओगे, वहाँ तुम प्रेम न कर पाओगे। इसलिए समाधि में नहीं डूबना हो पाता, परमात्मा से योग नहीं हो पाता। सकारण प्रेम करने वाले प्रभु से जुड़ नहीं पाते।

अकारण प्रेम की भाषा सीखो, थोड़ा उपयोगिता रहित प्रेम में डूबकर भी देखो, केवल बाजार में ही न जिओ। कभी सचमुच मंदिर में भी जाओ और वह जीवन का मंदिर तुम्हारे भीतर है। मंदिर का घंटा वहाँ तुम्हारे भीतर बज रहा है, उसी का नाम है एक हाथ की ताली। उसके प्रेम में पड़ो, डूबो। उपयोग कुछ भी नहीं है, आनंद बहुत है। याद रखना जहाँ-जहाँ उपयोग है किसी चीज का, वहाँ आनंद नहीं हो सकता। दुकान का बहुत उपयोग है, व्यापार का बहुत उपयोग है। लेकिन व्यापार से तुम्हें आनंद नहीं मिलेगा। जहाँ-जहाँ किसी चीज का कारण है, वहाँ उपयोग तो होगा लेकिन आनंद नहीं होगा। और आनंद केवल वहीं हो सकता है, जहाँ कोई वजह नहीं है। इसलिए जब भी तुम अकारण प्रेम करते हो

तब तुम्हें आनंद की एक झलक मिलती है। कभी-कभी छोटी-छोटी चीजों में मिलती है। एक आदमी जा रहा है सड़क पर तुम्हारे सामने, उसका रुमाल गिर गया और तुमने उसको रुमाल उठा कर दे दिया और आगे चलते बने; न तुम इस आदमी को पहचानते हो, न उससे कुछ लेना-देना है, न भविष्य में कुछ लेने की आशा है कि आज इसको रुमाल उठाकर दूंगा तो कल यह किसी काम आएगा। ऐसा तुम ने कोई गुणा-भाग नहीं बिठाया, हिसाब-किताब नहीं लगाया है। बस एक सहज घटना घटी। तुमने बेवजह प्रेम का एक कृत्य किया। यह कृत्य ही तुम्हें पुलकित कर जाता है। जब-जब तुम सकारण कोई सेवा करते हो, वह काम, वर्क बन जाता है। वह ड्यूटी, कर्त्तव्य हो जाता है। जब तुम अकारण कुछ करते हो, वह खेल, लीला, पूजा बन जाता है।

यदि सकारण से अकारण हो जाए तो साधारण प्रेम भी असाधारण हो जाता है। जब एक युवक-युवती आपस में प्रेम में पड़ते हैं, शुरु-शुरु में अकारण प्रेम की मात्रा काफी होती है। फिर जब वे विवाह कर लेते हैं तब अकारण प्रेम क्रमशः घटता जाता है। सकारण प्रेम ज्यादा होता जाता है। पतिदेव अब पत्नी से इसलिए प्रेम कर रहे हैं क्योंकि वह पत्नी है, वह भोजन पकाकर देगी, वह बच्चों की देखभाल करेगी, वह घर-गृहस्थी संभालेगी। सैकड़ों अन्य कारण हैं। अगर उसे नाराज कर दिया तो अभी वह प्लेटें तोड़ने लगेगी, खाना जला देगी, दाल में मिर्च डाल देगी, बच्चों की पिटाई कर देगी। अब अकारण प्रेम न रहा, अब सकारण प्रेम हो गया। पत्नी पति को प्रेम कर रही है क्योंकि वह धन कमाता है, नौकरी करता है। अगर उसको सताएगी, वह छोड़ के भाग जाएगा, तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। वह संन्यासी हो जाए, जंगल चला जाए कि दूसरी शादी कर ले, तलाक दे दे! तो एक सीमा तक ही सताओ। सताने की भी एक सीमा लोग रखते हैं कि वह कितना सहन कर सकता है। जैसे-जैसे उसकी सहनशीलता बढ़ती जाएगी, थोड़ा और ज्यादा सताना। तो प्रेम और घृणा का जो समन्वय चलता रहता है उसमें एक कैलकुलेशन रहता है कि किस हद तक एक-दूसरे को सता सकते हैं!

मैंने सुना है एक दिन सेठ चंदुलाल मारवाड़ी अपनी पत्नी के ऊपर बहुत

गुस्से में चिल्लाया कि तुम्हारे साथ जीने से तो मर जाना अच्छा है। काश! मुझे कोई जहर लाकर दे दे और मैं मर जाऊं। पत्नी गुस्से में आकर बोली कुछ काम तो अपने हाथ से करना सीखो। हद कर दी आलस्य की... अब जहर भी तुम्हें कोई लाकर दे! अरे आलसी कहीं के... निकम्मे!!

सामान्यत: हम जिसे प्रेम कहते हैं वह तो ऐसा ही है। प्रेम और घृणा का मिश्रण, उसमें तो कारण है। कभी-कभी अकारण प्रेम की झलक उसमें आती है तभी वह प्रेम आनंद की बौछार कर जाता है। लेकिन हमारी उपयोगितावादी दृष्टि पीछे से लौट आती है। हम प्रेम को भी व्यापार बना लेते हैं। एक हिसाब-किताब, गणित की दुनिया का हिस्सा बना लेते हैं। तब प्रेम भी दुखदायी हो जाता है। इसलिए प्रेम से दोनों चीज़ें मिलती हैं, आनंद भी कभी-कभी मिलता है। छोटी-सी झलक सुख की और पीछे फिर बड़ा दुख। एक छोटी-सी चमकती हुई बिजली की रजत रेखा और फिर घने काले दुख के बादल घेर लेते हैं। लेकिन इसके लिए दूसरा उत्तरदायी नहीं है। तुम्हारे भीतर की भावदशा क्या है? जब-जब तुम सकारण प्रेम करते हो, तुम दुख में पड़ते हो। और जब-जब अकारण प्रेम तुम्हारे बीच से प्रस्फुटित होता है, वह तुम्हें आनंद से भरता है। एक बार यह बात ठीक से समझ आ जाए, तुम्हारे हृदय में बस जाए, तब तुम अकारण प्रेम में जीना शुरू कर दोगे। सवाल यह नहीं कि दूसरे से कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा?

प्रेम करने में ही आनंद है इसलिए प्रेमपूर्ण हो जाओ। और तब ही प्रभु की ध्वनि अर्थात् एक हाथ की ताली के प्रेम में डूब सकोगे, समाधि में निमज्जित हो सकोगे।

प्रश्न—क्या प्रेम जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है? ओशो का कथन है, 'प्रेम है द्वार प्रभु का'। किंतु मुझे तो बारंबार प्रतीति होती है कि प्रेम नर्क का द्वार है, प्रेम एक सपना है जो टूट-टूट जाता है। समय-समय पर इसकी क्षणभंगुरता का भान मुझे होता रहता है। लेकिन मैं भूल-भूल जाती हूं और मूर्च्छा में घिरकर पुन:-पुन: मेरा हृदय नये रंगीले सपने निर्मित करने लगता है। कल्पना के आकाश में मेरा मन फिल्मी स्टाइल वाले अमर प्रेम की उड़ानें भरने लगता है। और फिर-फिर धड़ाम से जमीन

पर आकर मैं गिरती हूं। कई भावनात्मक फ्रैक्चर्स मुझे हो चुके हैं। कृपया इस दुष्चक्र से निकलने का रास्ता बताएं।

प्रेम के साथ होश को जोड़ो। यदि प्रेम मूर्च्छित रहेगा, स्वप्न में रहेगा तो यही होगा। बहुत फ्रैक्चर्स होंगे। खूब ऊंची उड़ान भरोगी... फिर गड्ढ़ों में आकर गिरोगी। शिखर से लुढ़कोगी, फिर घाटियों में आकर रोओगी। अनुभव से कुछ सीखो। तुम कहती हो कि प्रेम की क्षणभंगुरता का बार-बार अनुभव हो चुका लेकिन तुमने कुछ सीखा नहीं है। अकेला अनुभव पर्याप्त नहीं है। इस बात को मैं एम्फैसाइज करके कहना चाहता हूं। अनुभव के साथ समझ भी विकसित होनी चाहिए। सुनो यह गजल-

छूटी असीर तो बदला हुआ जमाना था,
न फूल था न चमन था न आशियाना था।
वो बाग ही न रहा जिस पे नाज था हमको,
वो शाख ही न रही जिस पे आशियाना था।
ऐ इश्क हमें इतना तो बता, अंजाम हमारा क्या होगा?
तकदीर बता अब इससे बुरा, अंजाम हमारा क्या होगा?

नादान चमन में कलियों ने, लब खोले नहीं हंसने के लिए,
वो पूछ रही है शबनम से, अंजाम हमारा क्या होगा?
कश्ती न रही साहिल न रहा, साहिल की तमन्ना भी न रही,
ऐ पूछने वाले जाहिर है, अंजाम हमारा क्या होगा?

अकेला अनुभव पर्याप्त नहीं है। अनुभव के साथ समझ भी विकसित होनी चाहिए। बहुत लोग हैं जिन्हें अनुभव तो होता है लेकिन कोई समझ विकसित नहीं होती। इसके विपरीत कुछ लोग हैं जो केवल बौद्धिक समझ विकसित करते रहते हैं। चिंतन-मनन करते रहते हैं। लेकिन उन्हें अनुभव नहीं है। उनकी बौद्धिक समझ किसी काम में नहीं आती। न अकेली समझ किसी काम की है, न केवल अनुभव किसी काम का है। दोनों का समन्वय चाहिए। तुम्हें अनुभव भी हो और समझ भी पैदा हो। उस अनुभव से कुछ सार-निचोड़ निकालो। उस अनुभव के फूल से कुछ इत्र संचित करो। तब तुम्हारे जीवन में विकास होगा। नहीं तो यही यही सपनों वाले प्रेम का अंतहीन खेल चलता रहेगा।

मैंने सुना है दो युवतियां बात कर रहीं थीं। एक युवती दूसरी को बता रही थी-"कल मैंने बड़ा ही अद्‌भुत, रोमांटिक सपना देखा। मैं खड़ी हुई थी किसी बगीचे में। एक बहुत सुंदर राजकुमार, सोने के आभूषण धारण किए, सफेद घोड़े पर बैठा, कड़बक-कड़बक-कड़बक घोड़े को दौड़ाता हुआ मेरे पास आया। मैं उसे देखकर बिलकुल मोहित हो गई। करीब-करीब मूर्च्छित सी होने लगी और तभी उसने मुझे अपनी बाहों में उठाकर घोड़े पर बैठा लिया। अपनी गोद में समेट लिया। मेरी तो आंखें ही बंद हो गईं। उसके सौंदर्य को मैं निहार भी नहीं पा रही थी और फिर घोड़ा दौड़ने लगा गड़बक-गड़बक-गड़बक।" वह युवती अपनी सहेली को बता रही थी कि "इतना सुंदर स्वप्न मैंने कभी देखा नहीं। अचानक वह घोड़ा उड़ने लगा आकाश में।" स्वप्न तो स्वप्न है। स्वप्न में तो कुछ भी हो सकता है। "घोड़ा उड़ने लगा, अचानक उसके पंख निकल आए! वह राजकुमार मुझे ले गया। आकाश में बादलों के ऊपर एक बहुत सुंदर हवाई महल बना हुआ था। शायद स्वर्गलोक ही रहा हो। वहाँ पहुंची। राजकुमार मुझे अपनी बाहों में उठा कर महल के अंदर ले गया। मैं

उसके सुंदर चेहरे की तरफ निहारती ही रही। वह भी बड़ी प्रेमपूर्ण नजरों से मेरी ओर देख रहा था। दो-तीन दरवाजे खोलने के बाद एक अति सुंदर कक्ष आया। शायद वह उसका शयन-कक्ष होगा। उसने ले जाकर मुझे बिस्तर पर पटका। तब मैंने उससे कहा कि 'हे सुंदर राजकुमार तुम मेरे साथ क्या करने वाले हो?' उस राजकुमार ने कहा कि 'हे सुंदरी, सपना तुम्हारा है; जैसा तुम चाहोगी वैसा ही करूंगा। यह स्वप्न तुम्हारा है इसमें भला मैं क्या कर सकता हूं। सपना क्या मेरे बाप का है? तुम जो चाहोगी वही होगा।' उसके इस कठोर वचन को सुनकर मेरी नींद खुल गई।"

समान्यत: मन खूब उड़ाने भरता है, वासना खूब सपने संजोती है। वासना का अर्थ ही होता है कल्पना। वासना अर्थात् माया, सपना। और तुम्हारे निजी सपने हैं। तुम्हें जैसे रंग-बिरंगे सपने देखना है, देखो। बस एक बात है कि सपना अनिवार्यरूपेण टूटेगा। यह बेचारे सपने का राजकुमार तुम जो चाहोगी, वही करेगा। लेकिन फिर भी यह स्वप्न भंग होगा। यह चल नहीं सकता, क्योंकि यह वास्तविक नहीं है। धोखाधड़ी और फरेब है।

जो फरेब मैंने खाए तुझे राजदां समझकर
उसे कैसे भूल जाऊं, एक दास्तां समझकर।
न मिटा दे ठोकरों से ये मजार है किसी का
जरा रहम कर खुदारा इसे इक निशां समझकर।

स्वप्निल प्रेम से जागो। समझ पैदा करो। अकेले अनुभव पर्याप्त नहीं है। कई लोग आते हैं, पश्चिम के लोग विशेषकर; कोई बीस लोगों से प्रेम कर चुका है, कोई पच्चीस लोगों से; कुछ लोग तो गिनती भूल चुके कि कितनी महिलाओं से या कितने पुरुषों से संबंध रह चुका है! लेकिन उनकी बुद्धि देखो तो बहुत बचकानी। इतना अनुभव; लेकिन सार निचोड़ कुछ भी न निकाला। सारा जीवन बेकार ही गया। और कुछ अन्य लोग हैं—ठीक उसके उलटे। जिन्हें अनुभव नहीं है किंतु बौद्धिक समझ बहुत है। किताबें पढ़-पढ़ के उन्होंने प्रेम के बारे में खूब सुन लिया है, समझ लिया है। तर्क-वितर्क कर सकते हैं। पंडित हो गए हैं। स्वयं किताबें लिख सकते हैं। प्रेम के ऊपर अधिकांशत: वही लोग

किताबें लिखते हैं जिन्हें स्वयं प्रेम के बारे में कुछ नहीं पता। शायद वे बेचारे कम्पनसेशन कर रहे हैं। कविताएं लिखकर कविगण अपनी प्रेम-वासना की पूर्ति कर लेते हैं। प्रेम-कहानी लिख कर, प्रेम के गीत गाकर क्षतिपूर्ति कर लेते हैं। पूरे हिन्दुस्तान में लता के गीत गा-गाकर कितनी लड़कियों ने प्रेम न किया होगा! लेकिन स्वयं लता मंगेशकर ने विवाह तक नहीं किया। शायद प्रेम के गीत गाना, वास्तविक जीवन में जो घटना नहीं घट पाई उसकी क्षतिपूर्ति है।

अधिकांश गीतकार, संगीतकार, कवि, लेखक, प्रेम के चित्र बनाने वाले चित्रकार, प्रेम की मूर्तियां बनाने वाले लोग, अभिनेता, कलाकार इत्यादि... इनके जीवन में शायद प्रेम की कमी रहती है। वे प्रेम नहीं कर पाते हैं इसलिए कुछ और करते हैं प्रेम के नाम पर, उसका कम्पनसेशन। इन्हें बौद्धिक समझ तो बहुत होगी... इन कवियों से पूछोगे प्रेम के बारे में... खूब समझा सकेंगे। लेकिन हो सकता है इन्हें अनुभव बिलकुल भी न हो। लेकिन इनकी कोरी समझ किसी काम की नहीं। यह किताबी ज्ञान किसी भी मतलब का नहीं। हाथ कुछ आता नहीं।

वे लोग जिन्होंने प्रेम के खूब-खूब अनुभव किये हैं, बार-बार सपने में उड़े हैं और फिर फिर नीचे गिरकर हाथ-पैर तोड़े हैं, उन्हें भी कुछ न मिला। दो बातें चाहिए—अनुभूति व प्रज्ञा- अगर केवल अनुभव ही दोहराते रहे, दोहराते रहे... तो उससे भी कुछ लाभ न होगा। इन दोनों का समन्वय चाहिए। अनुभव भी हो और उससे निष्कर्ष के रूप में समझ का विकास हो। रोने-धोने से कुछ न होगा।

जाते कहाँ है आप नजर दिल से मोड़कर
तस्वीर निकली पड़ती है आइना तोड़कर।
अल्ला रे दस्ते नार की नाजुक सी अंगुलियां
दिल मेरा छीन ले गईं पंजा मरोड़कर।
ताकत कहाँ नफ़स में रोके जुनूं का जोर
दीवाना भागा जाता है जंजीर तोड़कर।
शीशा ए दिल का चूर तो क्या गम है आरजू
मुंह उनका देख लेता हूं टुकड़ों को जोड़कर।
क्या जाने टपके आंख से किस वक्त खूनी दिल

आंसू गिरा रहा हूं जगह छोड़ छोड़कर।

इस तरह रोने-धोने से कुछ न होगा। प्रज्ञावान और मूढ़ व्यक्ति की परिभाषा समझाते हुए ओशो ने एक प्रवचन में कहा है कि मूढ़ आदमी वह है जिसकी आशा अनुभव के ऊपर जीतती चली जाती है। प्रज्ञावान आदमी वह है जिसकी आशा हार जाती है, अनुभव जीत जाता है। इस पर निर्भर करेगा तुम किसे जिताते हो, अनुभव को अथवा आशा को? ये दोनों तत्व तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। अनुभव होता रहे, होता रहे लेकिन फिर भी तुम्हारी आशा जीतती चली जा सकती है। कोई बात नहीं, यह प्रेमी ठीक नहीं था, यह प्रेमिका बेवफा निकली। कोई और कहीं तो होगा जो मेरे लिए बना है, एक-दूजे के लिए जो बने हैं। मेड फॉर ईच-अदर। उसकी थोड़ी खोजबीन करो। माना कि दस बार भ्रमित हो गए, दस लोग धोखा दे गए; लेकिन कहीं तो होगा ग्यारहवां। जिससे वास्तविक प्रेम हो सकेगा, सच्चा अमर प्रेम, जो कभी न टूटेगा।

कोई तुम्हारे लिए बना नहीं। तुम भी किसी के लिए नहीं बने। यहाँ सच्चा प्रेम हो ही नहीं सकता। यहाँ तो सपने वाला प्रेम ही संभव है। लेकिन वह दिन कब आएगा जिस दिन तुम्हारी आशा हारेगी और अनुभव जीतेगा? उस दिन से तुम प्रज्ञावान होना शुरू होगे। जब तक तुम्हारी आशा, तुम्हारा सपना, तुम्हारी वासना जीतती रहेगी, अनुभव हारता रहेगा; तब तक प्रज्ञा पैदा नहीं होगी। मूढ़ व्यक्ति की परिभाषा ओशो ने कही है- वह व्यक्ति, जिसके अनुभव के ऊपर आशा विजयी होती रहती है। वह हमेशा ही आशा से भरा होता है कि कोई बात नहीं, बस अब कुछ होने ही वाला है। अब वह व्यक्ति मिलने ही वाला है जिसको पाकर जीवन धन्य हो जाएगा। सफल हो जाएगा। यद्यपि आज तक ऐसा किसी की जिंदगी में नहीं हुआ। वह तो बहुत अच्छा हुआ लैला-मजनूं सौभाग्यवश एक-दूजे से नहीं मिल पाए, मिल गए होते तो भारी लड़ाई-झगड़ा चल रहा होता। हो सकता है बेचारे कहीं कोर्ट कचहरी में तलाक के लिए अर्जी दे रहे होते। नहीं मिलन हो पाया तो आशा बंधी रहती है। आशा क्षितिज के समान है, दिखती है पर मिलती नहीं।

अनुभव के साथ समझ को जोड़ो, आशा को तोड़ो। तुम पूछती हो कि

'ओशो कहते हैं, प्रेम है द्वार प्रभु का। किन्तु मुझे तो बारम्बार प्रतीति होती है कि प्रेम नर्क का द्वार है।'

चलो, मैं दोनों के बीच की बात तुम्हें बताता हूं। प्रेम केवल एक द्वार है और द्वार तो दोनों तरफ खुलता है इस तरफ भी, उस तरफ भी। वह एंट्रेन्स भी है और एक्ज़िट भी। उसी दरवाजे से तुम भीतर भी आ सकते हो और बाहर भी जा सकते हो। प्रेम केवल एक द्वार है। यदि तुम्हारा प्रेम बहिर्मुखी हुआ तो नरकगामी हो जाएगा। यदि तुम्हारा प्रेम अन्तर्मुखी हुआ तो स्वर्ग की तरफ ले जाएगा। तो ओशो जो कह रहे हैं, प्रेम है द्वार प्रभु का, उनका इशारा भीतर की तरफ है। और जब तुम कह रही हो कि प्रेम नरक का द्वार है तो तुम्हारा प्रेम बहिर्गामी है, परकेंद्रित।

द्वार तो एक ही है लेकिन उस की दो दिशाएं हैं। बाहर भी जा सकते हो, भीतर भी आ सकते हो। अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी दोनों हो सकते हो। प्रेम स्वकेंद्रित अथवा परकेंद्रित हो सकता है। द्वार तो केवल द्वार है, तुम किस दिशा में जाओगी यह तुम पर निर्भर है। ओशो ने ठीक कहा–स्वयं के अनुभव को व्यक्त किया। तुम भी ठीक कहती हो–अपने अनुभवों पर आधारित बात पूछी। परम सत्य कहीं मध्य में है। प्रेम सिर्फ एक द्वार है–स्वर्ग और नर्क के बीच–दोनों तरफ खुल सकता है।

धन्यवाद एवं शुभ रात्रि। चर्चा समाप्त, भाव तल पर आ जाएं। अब हम सब कीर्तन में डूबेंगे।

प्रेमं शरणं गच्छामि।

अध्याय तीन प्रेम के अनेक रंग

प्रश्नसार–

1. विभिन्न अवस्थाओं में प्रेम कैसा?
2. स्वकेंद्रित प्रेम की महत्ता
3. सक्रिय व दमित प्रेम से कठिनाई
4. धर्म में प्रेम व आनंद कैसे हो?

प्रश्न—बचपन से लेकर बुढ़ापे तक प्रेम के विभिन्न रूप क्या-क्या हैं?

बच्चा जब अपनी मां के गर्भ में होता है तो वहाँ तो कोई दूसरा है नहीं, वह अकेला ही है। अकेला भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि अकेला भी दूसरे के संदर्भ में होता है। केवल वही होता है। न वहाँ मैं का भाव है, न वहाँ तू का भाव है। सिर्फ प्रेम की ऊर्जा, जीवन ऊर्जा भर है। हम उसे कह सकते हैं– 'अकेंद्रित प्रेम।' किसी के ऊपर केंद्रित नहीं है। अभी कोई केंद्र है ही नहीं। लेकिन ऊर्जा तो है, जीवन की प्रेमल ऊर्जा है। वह है– अकेंद्रित प्रेम।

जन्म के बाद पूरा परिवार बच्चे को प्रेम करता है। माता-पिता, भाई-बहन, पड़ोसी-रिश्तेदार सभी बच्चे को प्रेम करते हैं। बच्चा केवल ग्रहण करने वाला होता है। वह सम्राटों की तरह जीता है। सब उसके सेवक होते हैं। जरा बच्चा रोया कि मां दौड़ी-दौड़ी आई। जरा उसे तकलीफ हुई कि सारे घर के लोग परेशान और पीड़ित हो गए। बच्चे का अहंकार निर्मित होना शुरू होता है। वह सोचता है मैं ही जगत का केंद्र हूं। वह तो इतने ही जगत को जानता है। वे पांच-सात लोग जो घर में रहते हैं, वे सभी उसके प्रति संवेदनशील हैं। उसे कोई तकलीफ न हो, सब लोग उसका ख्याल रख रहे हैं। सब लोग बच्चे पर प्रेम उलीच रहे हैं। बच्चा केवल लेने वाला है। देना तो वह जानता नहीं। केवल दूसरों से उसे प्रेम मिलता है तो इस भांति जो प्रेम पैदा होता है उसका नाम है 'अह्म-केंद्रित प्रेम'। बच्चे के अंदर धीरे-धीरे अहंकार प्रगाढ़ होने लगता है कि मैं इतना महत्वपूर्ण हूं कि सारे लोग मुझे प्रेम करें, सारे लोग मेरी सेवा करें, कोई मेरे लिए भोजन जुटाए, कोई मेरे लिए बिस्तर बदले, कोई मेरे कपड़े पहनाए, कोई मुझे नहलाए। सारे लोग मेरे नौकर-चाकर जैसे हैं, बड़ा अहंकार उत्पन्न होता है। अहम् केंद्रित प्रेम उत्पन्न होता है। उसे स्वयं के होने का अहसास होता है कि मैं निश्चित रूप से कोई बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति हूं। इतने लोग मेरी सेवा जो कर रहे हैं!

मैंने सुना है जगन्नाथ जी का रथ निकल रहा था। पुरी में लाखों लोगों

की भीड़ थी। सब तरफ से लोग झुक-झुक के नमन कर रहे थे। संयोग की बात एक कुत्ता रथ के आगे चल रहा था। और कुत्ते की आदत होती है आगे चलने की। नेता और कुत्ता में दो समानताएं हैं। दोनों का नाम 'ता' पर खत्म होता है और दोनों भीड़ के आगे-आगे चलते हैं। तो वह कुत्ता भी जगन्नाथ जी के रथ के आगे-आगे चल रहा था, उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि आज लाखों लोग मुझे झुक-झुक के प्रणाम कर रहे हैं! बहुत प्रसन्न हुआ—आखिर आज लोगों ने मेरे महत्त्व को पहचान ही लिया! खूब अकड़ कर चलने लगा कि इतने लोग झुककर अभिवादन कर रहे हैं। उसे क्या पता कि पीछे जो रथ आ रहा है, लोग उस रथ में विराजमान जगन्नाथ को प्रणाम कर रहे हैं।

बच्चा भी ऐसी भ्रांति में पड़ जाता है। वह सोचता है सारे जगत का केंद्र मैं हूं। छोटी-सी दुनिया है उसकी, घर-परिवार के थोड़े से लोग हैं। उनके बीच रहते हुए उसके अंदर सघन अहंकार पैदा हो जाता है। जब 'स्व' का पता चलना उसे शुरू होता है, तभी क्रमशः 'पर' का भी पता चलना शुरू होता है। किशोर होते-होते 'पर-केंद्रित प्रेम' पैदा होता है। बाल्यावस्था में अहम्केंद्रित प्रेम, उसके बाद परकेंद्रित प्रेम। दूसरों पर उसकी नजर हो जाती है। पहले स्वयं के होने का बोध हुआ फिर दूसरों के होने का बोध, और उसका प्रेम दूसरों पर केंद्रित हो जाता है। इसके बाद एक और प्रेम के विकास की अवस्था आती है जिसको कहें युवावस्था का प्रेम। स्वार्थ और परमार्थ दोनों का संयोग होता है। न केवल अहम्केंद्रित, न केवल परकेंद्रित। लेन-देन वाला मिश्रित प्रेम। छोटे बच्चे का प्रेम केवल लेने-लेने का प्रेम है। ठीक से युवा व्यक्ति का प्रेम लेने-देने वाला प्रेम है—यह है तीसरा प्रकार। कुछ लोग शरीर से तो युवा हो जाते हैं, मानसिक रूप से प्रेम मांगने वाले शिशु या किशोर ही बने रहते हैं।

फिर प्रेम का चौथा रूप है प्रौढ़ावस्था का प्रेम, जिसे करुणा कहना ज्यादा सटीक होगा। इसमें देने का, लुटाने का भाव होता है। कबीर कहते

हैं–'दोनों हाथ उलीचिए'। सांसारिक प्रेम का सर्वोपरि रूप है–करुणा या दान, शेयरिंग का भाव। इसके पश्चात् आध्यात्मिक प्रेम के जगत में प्रवेश होता है, जिसका उम्र से नहीं वरन् समझ से संबंध है। आयु से नहीं बल्कि प्रज्ञा से, देह के विकास से नहीं वरन् बुद्धिमत्ता से संबंध है।

पांचवां प्रकार है आत्मकेंद्रित प्रेम–इसके दो रूप हैं–साक्षीभाव और श्रद्धाभाव। जब प्रेम की उर्जा स्वयं की चेतना की तरफ बहे, आत्म-स्मरण में डूबे, तो साक्षी। जब गुरु के चैतन्य की ओर प्रेम प्रवाहित हो, तो श्रद्धा।

फिर छठवीं अवस्था है–सर्वकेंद्रित प्रेम। अब आत्मकेंद्रित से भी आगे बात बढ़ गई, समष्टि के साथ प्रेम हो गया। परमात्मा मुझे प्रेम कर रहा है, कृपाभाव–सारा जगत मुझे प्रेम कर रहा है और मैं पूरे अस्तित्व के प्रेम में हूं। इसको चाहो कह लो सर्वकेंद्रित, प्रभुकेंद्रित, ब्रह्म-केंद्रित, या कह लो अस्तित्व-केंद्रित। अब व्यक्ति से हट कर समष्टि पर प्रेम फैल गया। विकेंद्रित, अस्तित्वगत प्रेम इसे कह सकते हैं। अब किसी की तरफ नहीं है। जैसे एक फूल खिला है, सुगंध उड़ रही है। यह सुगंध किसी की तरफ नहीं जा रही। प्रयोजनरहित सुगंध का उड़ना-जब प्रेम ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है उसी का नाम है भक्ति, अर्थात् परमात्मा के प्रति प्रेम।

सांतवी, प्रेम की अंतिम अवस्था है अद्वैत, जहाँ केवल प्रेम ही बचता है। महावीर ने एक बड़ा प्यारा शब्द दिया है 'केवल ज्ञान'। जहाँ न ज्ञाता है, न ज्ञेय है। मैं आपको एक नया शब्द देना चाहता हूं, 'केवल प्रेम'। न प्रेमी है, न कोई प्रेम पात्र है। अब परमात्मा भी विदा हो गया। भगवान भी गया और भक्त भी गया। बस प्रेम की एक धारा है। न कहीं से आ रही, न कहीं जा रही। न उसका कोई कारण है, न उसका कोई स्रोत है। इसे मैं कहना चाहता हूं केवल प्रेम, 'ओनली लव'। जैसे 'केवल ज्ञान' महावीर ने कहा। न ज्ञाता, न ज्ञेय। ठीक उसी प्रकार केवल प्रेम, न प्रेमी न कोई प्रेम पात्र। न भक्त न भगवान। न मैं, न तू, कोई भी नहीं। यह अवस्था आप्तकाम होने की अवस्था है।

हर व्यक्ति अगर ठीक से प्रेम के अनुभव से गुजरे, बचपन से लेकर

बुढ़ापे तक तो निश्चित रूप से अहम्केंद्रित प्रेम से चलते-चलते वह सर्वकेंद्रित प्रेम तक पहुंच जाएगा और अंततः वह आप्तकाम बन जाएगा। 'केवल प्रेम' ही शेष रह जाएगा।

अकेंद्रित प्रेम से शुरुआत होती है और अंत सर्वकेंद्रित प्रेम के भी पार 'केवल प्रेम' पर होता है। कोई व्यक्ति ठीक ढंग से विकसित हो, अनुभव के साथ समझ को भी बढ़ाता चले तो यह बिलकुल स्वाभाविक प्रक्रिया है जो प्रत्येक के जीवन में घटेगी। घटनी ही चाहिए।

प्रश्न—स्वकेंद्रित प्रेम को आत्मसात करके ओशोधारा किन नये आयामों में प्रवेश कर रही है? कृपया समझाएं।

पहली बात, प्रेम परस्पर गुलामी से मुक्त हो जाएगा। हमारा जो सामान्य प्रेम है उसमें हम एक-दूसरे की स्वतंत्रता नष्ट करते हैं, एक-दूसरे को गुलाम बनाते हैं। और वह गुलामी फिर बहुत दुख देती है। जहाँ-जहाँ प्रेम मिलता है, वहाँ-वहाँ परतंत्रता और बंधन भी साथ में मिल जाते हैं। प्रेम से तो आनंद मिलता है लेकिन परतंत्रता से दुख मिलता है और इसलिए हर प्रेम अंततः नर्क का द्वार सिद्ध होता है। लेकिन जब हम स्वकेंद्रित प्रेम में जीने लगेंगे, दूसरे पर हमारी दृष्टि न होगी, दृष्टि स्वयं पर होगी तो प्रेम इस गुलामी की प्रताड़ना से बच जाएगा। हम दूसरे के मालिक बनने की कोशिश नहीं करेंगे।

प्रेम जब परकेंद्रित था तब आक्रामक था। प्रेम में एक तरह का हमला था और इसलिए प्रेम में भी एक बड़ी सूक्ष्म हिंसा छिपी हुई थी। इसलिए प्रेमी एक-दूसरे को काफी तकलीफ पहुंचाते हैं। नर्क पैदा कर देते हैं। कल ही एक सवाल किसी ने पूछा था न... क्या प्रेम नरक का द्वार है? क्योंकि प्रेम भी ऐग्रेसिव हो जाता है, परकेंद्रित प्रेम आक्रमण बन जाता है। प्रेम में परिपक्वता जब आती है वह आत्मकेंद्रित हो जाता है। व्यक्ति पैसिव बन जाता है। अब उसका प्रेम हिंसा नहीं है। वह आक्रमण नहीं करता। उसे

लगता है कि प्रेम मुझ तक आ रहा है जैसे नदियां गिरती हैं सागर में आकर, ठीक वैसे ही।

दूसरी बात, प्रेम में जो-जो जहरीले तत्व हैं : ईर्ष्या, घृणा, अहंकार, वैमनस्य, मोह, पकड़, मालकियत की भावना आदि, ये क्रमशः कम होते चले जाएंगे। जैसे ही तुम्हारा प्रेम परकेंद्रित के बजाय आत्मकेंद्रित होना शुरू हो जाएगा; ये विषैले तत्व समाप्त होते चले जाएंगे। तुम्हारा प्रेम शुद्ध से शुद्धतर होता चला जाएगा। अंततः प्रेम अपनी परिशुद्धि में पहुंच जाएगा। ओशो कहते हैं–'प्रेम की परिशुद्धि ही परमात्मा है।'

तीसरी बात, ध्यान और भक्ति के समन्वय की घटना घटेगी। साधना की शुरुआत में ध्यान और प्रेम दो मार्ग हैं, लेकिन जैसे-जैसे वे मंजिल की तरफ बढ़ते हैं, क्रमशः और नजदीक आते जाते हैं। जैसे कोई भारत की तरफ से हिमालय पर चढ़ता हो, तो उसे उत्तर दिशा की ओर मुंह कर के चढ़ना होगा। चीन से कोई चढ़े एवरेस्ट पर, उसे दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके चढ़ना होगा। शुरुआत में तो उनके प्रस्थान बिंदु बिलकुल भिन्न-भिन्न होंगे; लेकिन जैसे-जैसे गौरीशंकर नजदीक आता जाएगा, दोनों के मार्ग आपस में समीप होते चले जाएंगे। और अंततः एक बिन्दु पर जाकर दोनों मिल जाएंगे। ठीक इसी प्रकार ध्यान और भक्ति के मार्ग सदा से एक दूसरे के विपरीत समझे गए। प्रारंभिक रूप से हैं, लेकिन जैसे-जैसे वे नजदीक आते हैं, वे एक ही होते चले जाते हैं। जब मैं कहता हूं 'स्वकेंद्रित प्रेम' तो वह ध्यान के ज्यादा नजदीक हो जाएगा। जैसे ओशो ने सर्वसार उपनिषद् में साक्षी भाव को समझाया 'चेतना का ऐसा तीर जिसमें दोनों तरफ फलक हों– डबल ऐरोड कॉन्शसनेस'। ठीक वैसे ही हम ओशोधारा में एक नया शब्द प्रयोग करना चाहते हैं, डबल ऐरोड लव, ऐसा प्रेम जिसका एक तीर तो दूसरे की तरफ, लेकिन एक तीर सदा ही स्वयं की तरफ हो। इसको मैं कह रहा हूं स्वकेंद्रित प्रेम– अपना स्मरण सदा बना रहे। जिसे हम प्रेम करते हैं सामान्यतः केवल उसका स्मरण बना रहता है। किंतु स्वकेंद्रित प्रेम

में प्रेमपात्र के साथ-साथ प्रेमी को अपनी भी याद बनी रहे।

यहाँ से ध्यान और भक्ति का जो भेद था, इन दो मार्गों की जो विपरीतता थी, वह समाप्त होगी और हम ध्यान और प्रेम को एक-दूसरे के नजदीक ला सकेंगे।

ध्यान प्रेमपूर्ण हो सकेगा। प्रेम ध्यानपूर्ण हो सकेगा।

प्रेम जिन गड्ढों में गिराता है, उन गड्ढों से बच सकेंगे और ध्यान जिस सूखेपन और अहंकार में ले जाता है उससे भी बच सकेंगे। इन दोनों दुर्घटनाओं से बच सकेंगे। अतीत में दोनों दुर्घटनाएं हुई हैं। ध्यानी बहुत अहंकार के शिखर पर चढ़ गए। वे भी गिरे उनके भी फ्रैक्चर्स हुए हैं। और प्रेमी भी बहुत-बहुत गड्ढों में गिरे। ऊंची उड़ाने भरीं और फिर अपने हाथ-पैर भी तोड़े। क्योंकि दोनों एकांगी मार्ग पर चल रहे थे। यह ऐसा ही हुआ जैसे कोई पागल सिर्फ बाएं पैर से चलने की कोशिश करे। और कोई दूसरा पागल केवल दाहिने पैर से चले। लंगड़ी दौड़ होगी। बहुत दूर की यात्रा न हो सकेगी। अगर सम्यक् यात्रा करनी है तो दोनों पैरों से चलो। बाएं और दाएं दोनों ही पैरों का उपयोग करो। तब परमात्मा की मंजिल तक पहुंचना आसान हो जाएगा। तो ओशोधारा में हम जिस स्वकेंद्रित प्रेम की बात कर रहे हैं वह ध्यान और भक्ति को समन्वित करेगा।

चौथी बात, सातों प्रकार के जो योग हैं उनके भेदभाव समाप्त हो जाएंगे। साक्षीभाव और श्रद्धाभाव की खाई पट जाएगी। कर्मयोग, तंत्रयोग, हठयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग और सांख्ययोग; इनके जो अंतर हैं वे समाप्त हो जाएंगे। तब हम जानेंगे कि सभी एक ही मंजिल तक ले जाते हैं।

पांचवीं बात, अध्यात्म की संसार से शत्रुता नष्ट हो जाएगी। ओशो द्वारा प्रतिपादित 'ज़ोरबा दि बुद्धा' वाली बात आसानी से घट सकेगी; संसार और अध्यात्म में जो शत्रुता है, वह मिट सकेगी। कुछ लोग कहते हैं हम संसार को प्रेम करते हैं। बहिर्मुखी प्रेम में उनका रस है। कुछ लोग ध्यान में डूबते हैं, केवल स्वयं को प्रेम करते हैं। इसके ठीक मध्य की बात हो

जाएगी। एक सेतु निर्मित हो जाएगा। स्वकेंद्रित प्रेम में प्रेम भी है और ध्यान भी है। 'प्रेम परमात्मा है'–ओशो की यह घोषणा व्यवहारिक रूप ले सकेगी, अगर हम स्वकेंद्रित प्रेम की बात फैला सकें। और यह एक बिल्कुल नई और अपने आप में अद्‌भुत घटना होगी। प्रेम ही परमात्मा है, अभी तक यह केवल एक सिद्धांत की बात थी।

'प्रेम समाधि' नामक आठवें तल के ओशोधारा समाधि कार्यक्रम में इसके प्रयोग किये जा रहे हैं जिसका केंद्रीय बिंदु है 'स्वकेंद्रित प्रेम'। प्रेमपात्र के दर्पण में हम खुद की ही छवि देख लेते हैं। दूसरा, स्वयं तक पहुंचाने में मददगार बन जाता है। जिसे हम बाहर खोजते हैं वह भीतर ही है। लेकिन बाहर भटकना भी विकास के मार्ग पर अनिवार्य है। परकेंद्रित होकर, बहुत-से बंद दरवाजे खटखटाकर अंततः अपने घर आना होता है। यह प्यारी गज़ल सुनो-

ये कैसी जिंदगी गुजरी तेरे बगैर
कि जैसे कोई गुनाह किए जा रहा था मैं।
कहाँ थे आप ज़माने के बाद आए हैं
मेरी तलाश भी जाने के बाद आए हैं।
जहान भर में जिन्हें खोजा दर-ब-दर ढूंढ़ा जब
हम थके, रुके, हारे, तो आज आए हैं। हमारे पास
वो आए तो इस तरह आए कि जैसे हमसे हमीं
को मिलाने आए हैं।
तमाम रात कटी उनकी इंतजारी में
सुबह को होश में आने के बाद आए हैं। मिले
तो ऐसे कि अब है जुदाई नामुमकिन मेरी ही रूह
में समाए थे याद आए हैं। मेरे ही दिल में समाए
थे याद आए हैं।

प्रश्न–सक्रिय प्रेम दुख में ले जाकर हिंसा बन जाता है। और दमित प्रेम

घाव बनकर विकृति पैदा करता है। हम क्या करें समझ में नहीं आता?

बहुत संक्षेप में ओशो का एक सूत्र कहना चाहूंगा–नीदर सप्रेशन नॉर ओवर–एक्सप्रेशन, बट ट्रांसफॉरमेशन। ओशो तीसरी बात सुझाते हैं–न दमन, न अति–प्रदर्शन, बल्कि रूपांतरण। ऊर्ध्वगमन जीवन की दिशा होनी चाहिए। अपने भीतर के प्रेम को धीरे–धीरे ऊर्ध्वगामी बनाओ। बहिर्गामी से अंतर्गामी। फिर अंतर्गामी से अनागामी।

प्रश्न–आकार व रूप के प्रति प्रेम, संसार में उलझाता है। अरूप, निराकार और शून्य के प्रति तो प्रेम ही नहीं उपजता। इसलिए प्रेममार्गी प्रायः गौणी भक्ति, पूजा, प्रार्थना, मूर्ति, मंदिर, तीर्थ आदि क्रिया-कांडों में फंस जाते हैं तथा शून्य के खोजी रूखे-सूखे, उदास, त्यागी-तपस्वी बनकर पाषाणवत्, उत्सवहीन हो जाते हैं। धर्म का सम्यक् मार्ग कौन सा हो सकता है जहाँ प्रेम भी हो और आनंद भी हो?

ये दो अतियां हैं, एक स्थूल, एक शून्य। एक सगुण, एक निर्गुण। जो सगुण में अटक गये वे मूर्ति पूजा करने लगे, गौणी भक्ति में उलझ गये। जो शून्य की खोज में चले वे प्रेमहीन, उत्सवहीन हो गये। उनके जीवन से सारा रस विदा हो गया।

दोनों अतियों से बचो। ठीक मध्य में एक तीसरी बात और है–वह है सूक्ष्म। न तो निर्गुण, न सगुण, बल्कि सूक्ष्म-गुण। जैसे ओंकार-नाद है, भीतर का दिव्य-प्रकाश है। न तो यह स्थूल है और न ही शून्य है। एक प्रकार का सूक्ष्म भराव है। भीतर प्रकाश भरा हुआ है, भीतर दिव्य सुगंध फैली है, खुमारी छाई है। ओंकार का नाद गूंज रहा है।

ये जो सूक्ष्म गुण हैं–न तो ये स्थूल हैं, न ही ये शून्य हैं। जो शून्य के खोजी हैं वे भटक जाएंगे, खो जाएंगे मरुस्थल में। वे रूखे-सूखे दीन-हीन हो जाएंगे। रसधार समाप्त हो जाएगी। और जो साकार में, रूप में उलझ गये–चाहे सांसारिक प्रेम हो या आध्यात्मिक प्रेम; अंततः वह सांसारिक ही सिद्ध होगा। तो स्थूल को प्रेम करने वाले लोग पत्थर की मूर्तियों में अटक जाएंगे, और जो शून्य को प्रेम करने वाले हैं, वे खुद ही पत्थर की मूर्ति हो

जाएंगे, पाषाण-हृदय। उनका हृदय सूख जाएगा। मैं चाहता हूं, इसके ठीक मध्य में हम जीना सीखें।

तुम पूछते हो, 'सम्यक् मार्ग क्या है धर्म का?'

सम्यक् मार्ग है—सूक्ष्मता की खोज। चलो बाह्य-ध्वनि से अंतर-ध्वनि की ओर। आहत नाद से अनाहत नाद की ओर। स्थूल प्रकाश से सूक्ष्म प्रकाश की ओर। सूक्ष्मातिसूक्ष्म आवाज—ओंकार को सुनो। शून्य होने की बात भूल जाओ। इस बात ने अनेक लोगों को बहुत-बहुत भटकाया है। कुछ हाथ आया नहीं। तुम सूक्ष्म तत्वों को खोजो। सूक्ष्म सुवास क्या है? भीतर सूक्ष्म स्वाद क्या है? ठीक इसी प्रकार सूक्ष्म प्रेम और सूक्ष्म आनंद की तलाश करो। प्रेमानंद परमात्मा का स्वरूप है।

'सक्रिय प्रेम' सदा आकार से होता है, रूप से होता है, वह अंततः बंधन और दुखदायी सिद्ध होता है। संभलना। मगर उससे बचने की कोशिश में यदि दूसरी अति पर जाकर प्रेम से रिक्त हो गए तो भी बात बनेगी नहीं। तुम्हारे जीवन की रसधार खो जाएगी। सूक्ष्म के प्रेम में पड़ना। मैं तुम्हें ठीक मध्य की बात बता रहा हूं।

प्रेम को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम होने दो। प्रेम-समाधि में हम उसी सूक्ष्मतम प्रेम की ओर यात्रा पर निकलते हैं। प्रभु केवल सच्चिदानंद ही नहीं, सच्चिद्प्रेमानंद है।

प्रेमं शरणं गच्छामि!

अध्याय चार

प्रेम, प्रेम और प्रेम में भेद

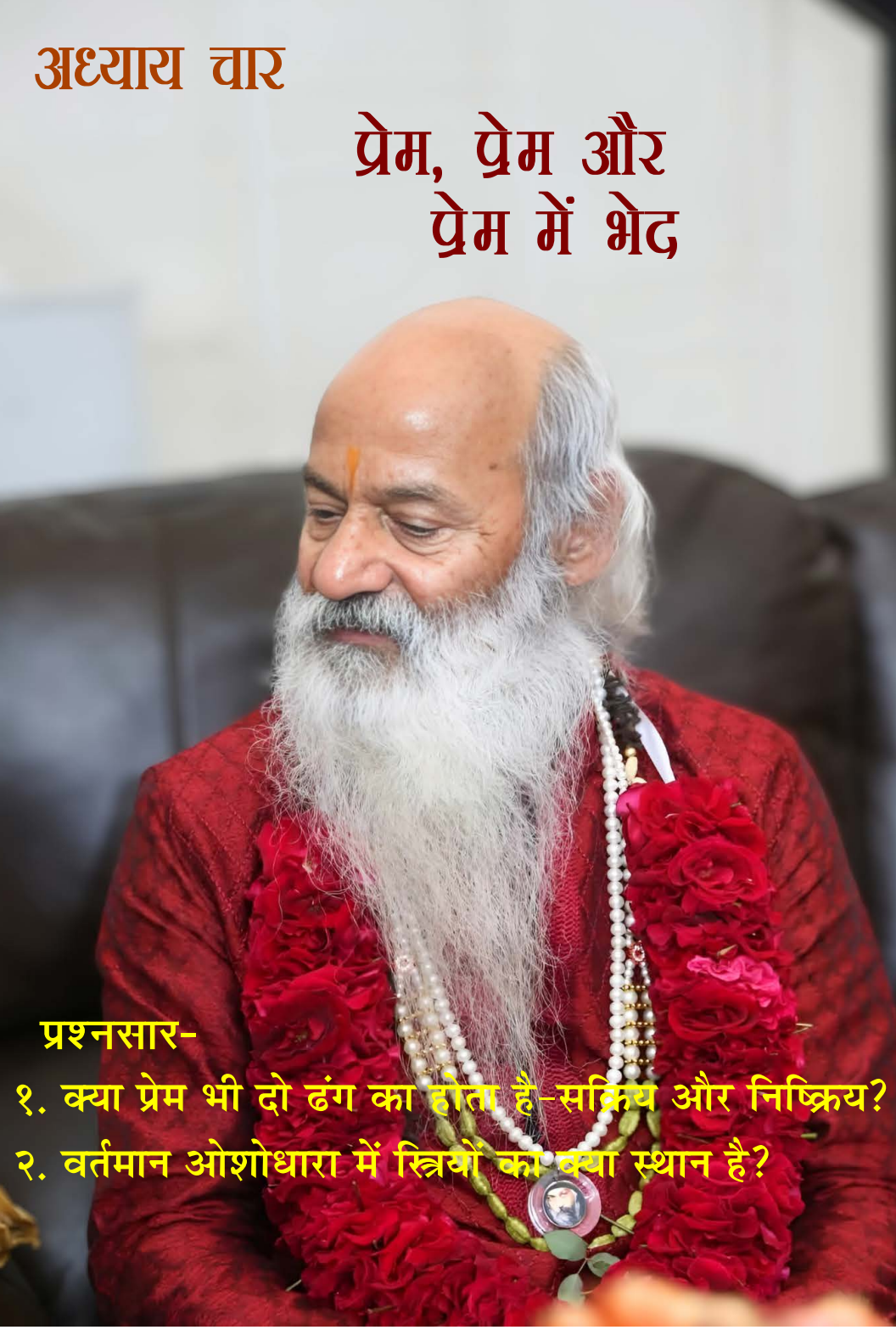

प्रश्नसार-

१. क्या प्रेम भी दो ढंग का होता है-सक्रिय और निष्क्रिय?

२. वर्तमान ओशोधारा में स्त्रियों का क्या स्थान है?

प्रश्न—महावीर ने एक नया शब्द दिया था—केवल ज्ञान, आपने भी एक नया शब्द दिया—केवल प्रेम। ओशो ने ध्यान से संबंधित दो नए शब्द दिये थे—सक्रिय ध्यान और निष्क्रिय ध्यान। क्या आप कहना चाहेंगे कि प्रेम भी दो ढंग का होता है-सक्रिय और निष्क्रिय; ऐक्टिव लव और पैसिव लव? कृपया प्रकाश डालें।

निश्चित रूप से, जब भी प्रेम सक्रिय होता है, सक्रिय होने के साथ ही आक्रामक हो जाता है। एक सूक्ष्म हिंसा प्रेम की शुरु हो जाती है। 'ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया' नामक प्रवचनमाला में अहिंसा पर बोलते हुए ओशो कहते हैं कि सबसे ज्यादा हिंसा जो हम करते हैं; वह प्रेम के नाम पर अपनों के साथ करते हैं।

जिसे हम प्रेम कहते हैं, उसके नाम पर एक सूक्ष्म हिंसा चलती है और उस हिंसा के प्रति सजग होना बहुत जरूरी है।

जब भी प्रेम सक्रिय रूप लेता है, वह दूसरे पर हमला करता है, आक्रमण करता है। क्योंकि अतिक्रमण हो जाता है, अपनी सीमा के बाहर हम चले जाते हैं। इसलिए मैं पैसिव प्रेम, निष्क्रिय प्रेम की चर्चा कर रहा हूं। रिसेप्टिव प्रेम... तुम ग्रहणशील बनो। सब तरफ से प्रेम की तरंगे तुम तक आ रही हैं, इस भाव में डूबो। यह रिसेप्टिव प्रेम ही अहिंसक प्रेम हो सकता है।

रिसेप्टिव प्रेम में डूबो। भाव करो कि तुम्हें जो प्रेम मिल रहा है, उसे तुम ग्रहण कर रहे हो। जैसे कुएं में कोई पानी डाले और कुआं उसे ग्रहण कर लेता है। और ग्रहण ही नहीं कर लेता, कुएं के नीचे जो भूमिगत जल भंडार है, वह पानी उसमें समा जाता है। ठीक इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति तुम्हें प्रेम करे, तुम उसकी ऊर्जा ग्रहण करो। भाव करो वह तुम्हारे भीतर समा रही है। उसे अपनी चेतना तक जाने दो। आत्मा के तल से गुजर कर वह परमात्मा के तल पर पहुंच जाएगी। जिस स्त्रोत से वह ऊर्जा आ रही है, वह परमात्मा है; और जो ग्रहण कर रहा है वह भी परमात्मा ही है। यह जो रिसेप्टिव प्रेम है यह करुणापूर्ण हो सकता है, अहिंसक हो सकता है।

इसके संबंध में विज्ञान भैरव तंत्र की दो विधियां बड़ी उपयोगी हैं।

तंत्र सूत्र की विधि नं.-38 में शिव कहते हैं, मानो कि तुम जगत का केंद्र हो और सब तरफ से ऊर्जा की तरंगें तुम्हारी ओर आ रही हैं। तुम ग्रहण करने वाले हो गये हो। ठीक इसी प्रकार विधि नं.-100 में शिव कहते हैं कि अपने आत्मगत भाव में स्थिर बनो। स्वयं में स्थित रहो। भाव करो जगत की कोई भी वस्तु, कोई भी व्यक्ति, कोई मन:स्थिति, कोई परिस्थिति तुम्हें बाहर नहीं खींच रही है। तुम अपने आप में स्थित हो गये।

बड़ी अद्‌भुत विधि है कभी करके देखना। चंद मिनट में ही इसका सुखद परिणाम तुम्हें पता लग जाएगा।

सामान्यत: हमारा प्रेम बहिर्मुखी है, हम बाहर की तरफ खिंचे जा रहे हैं। प्रेमी या प्रेम पात्र की तरफ हमारी ऊर्जा बह रही है। कोई दृश्य हम देखते हैं; वह दृश्य हमें बाहर खींचता है। इस विधि का प्रयोग करना और इसके अद्‌भुत परिणाम तुम जान सकोगे।

तुम स्वयं में स्थित हो जाओगे। ओशो तो कहते हैं—स्वस्थ होने का अर्थ ही है, स्वयं में स्थित होना। जब भी हम सक्रिय प्रेम में डूबते हैं, हम 'अस्वस्थ' हो जाते हैं। वहाँ से रुग्णता शुरु हो जाती है। हमने स्वयं का केंद्र खो दिया। दूसरा हमारे लिए, हमसे भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। फिर जो हम आचरण करेंगे, वह आचरण दूसरे के मुताबिक होगा। हम उस के गुलाम हो गये। वह व्यक्ति हमसे जो अपेक्षा करता है, हमें वे अपेक्षाएं पूरी करनी होंगी। और फिर धीरे-धीरे हम खाली और खोखले होते जाएंगे। जब हमारी ऊर्जा बहिर्गामी होती है, अपने प्रेम-पात्र की तरफ जाती है, तब भीतर हम रिक्त होते जाते हैं।

इस प्रकार का प्रेम अंतत: क्रोध में परिणत हो जाता है। हमारी सारी ऊर्जा बाहर चली जाने की वजह से उस व्यक्ति के प्रति हम क्रोध और घृणा से भर जाते हैं, जिसके कारण हम ऊर्जाहीन हो गये।

इसलिए सारे प्रेम अंतत: घृणा और क्रोध में ले जाते हैं। मनोवैज्ञानिक इस पर बहुत चिंतन करते हैं कि कारण क्या है? प्रेमी आपस में इतना झगड़ते क्यों हैं? इसका कारण सीधा साफ है—जब भी प्रेम बहिर्गामी होगा, सक्रिय रूप लेगा, तो यह सक्रिय प्रेम कुछ क्षणों के लिए ही हो सकता है चूंकि कोई भी

सक्रियता हमेशा बरकरार नहीं रह सकती। प्रेम के केवल क्षण ही होते हैं। प्रेम के घंटे नहीं होते, प्रेम के दिन नहीं होते, प्रेम के हफ्ते नहीं होते, प्रेम के वर्ष नहीं होते। सक्रियता थोड़ी देर ही हो सकती है। अगर मैं आपसे कहूं कि आप पैदल चलो, आप कितना पैदल चल सकते हो? एक घंटा, दो घंटा, दस घंटा? निरंतर तो पैदल नहीं चला जा सकता। विश्राम तो करना ही होगा।

सक्रिय प्रेम हमेशा थका देगा, और उसके बाद विश्राम की, छुटकारे की जरूरत पड़ेगी। यह प्रेम सदा-सदा नहीं हो सकता। यह तुम्हारा स्वभाव नहीं हो सकता। लेकिन मैं जिस पैसिव प्रेम की बात कर रहा हूं, रिसेप्टिव प्रेम, ग्रहणशील प्रेम, वह हमारा स्वभाव है। उसमें हम सदा ही हो सकते हैं, क्योंकि हम अपने स्वभाव से च्युत नहीं हो रहे हैं। हम अपने आप में रमे हुए हैं।

भाव करो : प्रेम ऊर्जा की तरंगें तुम्हारी तरफ आ रही हैं। और यह केवल कल्पना नहीं, यही सच्चाई भी है। श्वास-श्वास में ऑक्सीजन भीतर जा रहा है, पेड़-पौधे हमें ऑक्सीजन दे रहे हैं, प्राणवायु दे रहे हैं। सूरज हमें ऊष्मा और रोशनी दे रहा है। चांद हम पर सौंदर्य लुटा रहा है। जगत के कण-कण से हमारी तरफ ऊर्जा आ रही है।

तंत्र सूत्र की विधि कहती है- दुनिया की सारी ध्वनि तरंगें तुम्हारी तरफ आ रही हैं। और सच्चाई यही है—जो भी ध्वनि तुम सुन रहे हो, अपने स्त्रोत से चलकर वे तुम तक आ रही हैं, इसलिए तुम उसे सुन पा रहे हो। वरना सुन ही नहीं पाते। स्वभावत:, जहाँ तक ध्वनियों के जगत का संबंध है, तुम हमेशा ही केंद्र में हो।

ठीक यही बात प्रकाश पर लागू होती है। कितने ही करोड़ों, अरबों, खरबों प्रकाश वर्ष दूर हों तारे, उनकी रोशनी तुम तक आ रही है। तभी वे तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं। तुम जगत का केंद्र हो। जो भी तुम्हें दिखाई पड़ रहा है, उन सबकी रोशनी तुम तक आ रही है। ठीक इसी प्रकार जो भी सुगंध तुम सूंघ रहे हो, वह अपने स्त्रोत से चलकर तुम्हारे नासापुटों तक आ रही है।

इस विधि को समझाते हुए ओशो कहते हैं, यह भाव अपने आप में इतना रिलैक्सिंग, इतना विश्रामदायी है कि 'मैं जगत का केंद्र हूं'। कभी इस भाव में

डूबना। विशेष रूप से नाद के साथ। 'तंत्र सूत्र' की यह 38 वीं विधि अनाहत नाद की विधि है।

ओशो ने नादब्रह्म ध्यान में भी इसको जोड़ा है कि भाव करो कि सारे ब्रह्मांड से ऊर्जा की तरंगें तुम तक आ रही हैं। तुम जगत के केंद्र हो गये। यह तरकीब तुम्हें निष्क्रिय प्रेम में ले जाएगी। यह प्रेम सदा-सदा हो सकता है, केवल ऐसा प्रेम की शाश्वत हो सकता है। सक्रिय प्रेम कभी भी शाश्वत नहीं हेा सकता, अमर नहीं हो सकता। वह तो क्षणभंगुर रहेगा ही।

कोई भी सक्रियता सदा नहीं हो सकती। केवल निष्क्रिय प्रेम ही शाश्वत, अमर हो सकता है।

मुझे याद आता है, जब ओशो स्वयं ध्यान शिविर लेते थे, दोपहर के समय एक प्रयोग रखते थे। वे आकर बीच में बैठ जाते और सारे साधक-साधिकाएं उनके चारों तरफ। मौन सत्संग होता और ओशो कहते, 'भाव करो, तुम कुछ ग्रहण कर रहे हो। सुनने की कोशिश करो, मैं तुमसे मौन में कुछ कह रहा हूं, बिना शब्दों के। तुम सुनने की कोशिश करो। मैं तुम्हें कुछ दे रहा हूं मौन में। तुम उसे रिसीव करने की कोशिश करो।'

यह एक घंटे का प्रयोग बड़ा अद्‌भुत होता था। कोई सक्रियता नहीं। जब तुम सुनने की कोशिश करते हो तो तुम रिसेप्टिव हो जाते हो। कान ग्राहक हैं, रिसीव करते हैं। आंखें आक्रामक हैं, देखतीं हैं। इसलिए ध्यानियों ने सदा ध्यान के समय आंखें बंद कर ली हैं। कान ग्रहणशील हैं, कान आक्रमण नहीं करते। आंख आक्रमण करती है। जब तुम किसी को देखते भी हो, तब भी हमला हो जाता है। और कोई भी व्यक्ति पसंद नहीं करता कि कोई उसे गौर से देर तक निहारता रहे। वैसे आदमी को हम लुच्चा कहते हैं, जो देर तक घूरकर देखता है। 'लुच्चा' शब्द 'लोचन' से बना है। लोचन यानी आंख। उसी से 'आलोचक' शब्द बना है, वह जो घूर-घूर के देखता है। और कोई भी व्यक्ति देखा जाना पसंद नहीं करता।

सक्रिय प्रेम, आक्रामक प्रेम है, हिंसक प्रेम है। स्वीकार करो, ग्रहण करो, सत्कार करो, आत्मसात करो प्रेमतरंगों को। उन्हें अपने भीतर ऐब्ज़ॉर्ब कर लो।

ग्रहण कर लो और उन्हें अपनी अंतरात्मा के केंद्र तक जाने दो। और याद रखो जब कोई तुम्हें प्रेम करता है, वह किसे प्रेम करता है? तुम्हारी देह को? नहीं, तुम्हारी देह को कोई प्रेम नहीं करता। जिस दिन तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी तुम्हारी देह तो ज्यों की त्यों रहेगी। वही लोग जो तुम्हें प्रेम करते थे, जल्दी से अर्थी बांधेंगे और मरघट पर ले जाकर जला के राख कर देंगे। तुम्हारे शरीर को कोई प्रेम नहीं करता। नहीं तो मर जाने के बाद भी रखे रहते शरीर को।

फिर वे किसे प्रेम करते हैं? तुम्हारे मन को प्रेम करते हैं? यदि तुम ऐसा सोचते हो तो बहुत बड़ी भ्रांति में हो। मन को भी कोई प्रेम नहीं करता। मन के कारण ही तो इतने झगड़े-झंझट होते हैं। इतनी कलह होती है, वाद-विवाद होते हैं। मन की वजह से तो प्रेम में सिर्फ व्यवधान पड़ते हैं। कोई भी तुम्हारे मन को प्रेम नहीं करता। विचारों के मतभेद आपस में कितना झगड़ा-फसाद कराते हैं। प्रेमी-प्रेमिकाओं का झगड़ा किसलिए होता है? क्योंकि उनके मन के विचार आपस में मिल नहीं रहे। अर्थात् कोई तुम्हारे मन को भी प्रेम नहीं करता। तुमने शायद कभी इस ढंग से सोचा न हो कि जब कोई व्यक्ति तुम्हें प्रेम करता है तो वह तुम्हारे भीतर के किस तत्व को प्रेम करता है? शरीर को तो स्पष्ट रूप से नहीं करता। मन को भी नहीं करता। मन से तो सिर्फ उपद्रव होते हैं।

तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है उसी को वास्तव में प्रेम किया जा रहा है। और जब तुम किसी को प्रेम करते हो तब तुम उसके चैतन्य को प्रेम करते हो। तो क्यों न दूसरे के प्रेम को अपने उसी केंद्र से ग्रहण करना सीखो। शरीर और मन के पार तुम्हारी चेतना उस प्रेम को आत्मसात कर ले।

'आत्मसात' शब्द बड़ा अद्‌भुत है। ओशो बार-बार इसका प्रयोग करते हैं, आत्मसात कर लो, अपनी आत्मा में मिला लो। ऐब्ज़ॉर्ब कर लो। और आत्मा का केंद्र है परमात्मा– नाद-ब्रह्म कहा जाने वाला वह परम तत्व आपके भीतर है, वही दूसरे के भीतर भी है। वह एक ही है। परमात्मा ही परमात्मा को प्रेम कर रहा है। प्रेम की धारा बह रही है।

ऐसा प्रेम ही एक 'स्वस्थ' प्रेम है।

मैं तीन शब्द आपको और देना चाहूंगा : एक हुआ बहिर्गामी प्रेम, जिसे हम सामान्यत: सक्रिय प्रेम कहते हैं। दूसरा हुआ अंतर्गामी प्रेम, पैसिव प्रेम। और इन दोनों के पार तीसरा, जिसे मैंने कहा है–अनागामी अथवा केवल प्रेम। वह कहीं गमन नहीं कर रहा, न बहिर्गामी है, न अंतर्गामी है। न बहिर्मुखी, न अंतर्मुखी, न एक्स्ट्रोवर्ट, न इन्ट्रोवर्ट। न ऐक्टिव, न पैसिव। सक्रिय एवं निष्क्रिय के द्वन्द्व से अतीत, प्रेम की एक और दशा है, जहाँ 'केवल प्रेम' है। न वहाँ प्रेमी है, न कोई प्रेमपात्र है।

जैसे महावीर ने कहा केवल ज्ञान। न कोई ज्ञाता, न कोई ज्ञेय। उपनिषद् के ऋषियों ने कहा केवल दर्शन। न कोई दृश्य, न कोई द्रष्टा। ठीक वैसे ही भक्ति के मार्ग पर, प्रेम के मार्ग पर एक नया शब्द गढ़ना चाहता हूं 'केवल प्रेम'। न कोई प्रेमी, न ही कोई प्रेमपात्र। न कोई भक्त, न कोई भगवान। केवल भक्ति। वहाँ तक हमें जाना है। लेकिन जाने के रास्ते पर जो बीच का पड़ाव है वह है अंतर्मुखी प्रेम, पैसिव प्रेम। कम से कम ऐक्टिव प्रेम से पैसिव प्रेम पर आओ। 'अटैक' करने वाले प्रेम से 'रिसीव' करने वाले प्रेम में जीना सीखो फिर इसके बाद एक कदम और बाकी रह जाता है–केवल प्रेम।

प्रश्न–महावीर कहते हैं कि स्त्री पर्याय से मोक्ष संभव नहीं है। बुद्ध ने काफी इंकार के बाद जब स्त्रियों को दीक्षा दी तो कहा कि मेरा धर्म जो

हजारों साल चलता, अब केवल 500 वर्ष ही चल पाएगा। यद्यपि जीसस जैसे उदास व्यक्ति को भी सूली से उतारने वाली केवल महिलाएं थीं, किंतु जीसस ने महिलाओं के लिए एक भी सम्मानजनक वचन कभी नहीं कहा। मगर परमगुरु ओशो ने स्त्रियों को खूब समादृत किया, नारी जाति सदा उनकी ऋणी रहेगी। वर्तमान ओशोधारा में स्त्रियों का क्या स्थान है?

ओशो ने जो किया वह औषधि समझो। पहले एक व्याधि थी, पुरुषों ने स्त्रियों का खूब शोषण किया था। उस व्याधि को मिटाने के लिए ओशो ने औषधि दी। उन्होंने स्त्रियों को ऊपर रखा पुरुषों के। कम्यून की व्यवस्था में सारे अधिकार स्त्रियों को सौंप दिये। जरूरी था संतुलन लाने के लिए, पहले असंतुलन हो चुका था। ओशो ने स्त्रियों के पलड़े को भारी किया। यह समय की मांग थी। लेकिन आप पूछती हैं कि आज ओशोधारा में स्त्रियों का क्या स्थान है?

मैं कहना चाहूंगा अब वर्तमान में स्त्री और पुरुष बराबर होने चाहिए। ओशो ने जो किया, वह बिलकुल जरूरी था क्योंकि पहले पुरुषों का पलड़ा भारी था। अब संतुलन की अवस्था आ गई है। अब लोग काफी समझदार हो गये हैं। अब न स्त्रियां पुरुषों को दबा रहीं हैं, न पुरुष स्त्रियों को दबा रहे हैं। अब एक मैत्रीपूर्ण संबंध, एक प्रेमपूर्ण स्थिति कायम हो सकती है।

निश्चित ही, अतीत में स्त्रियों को खूब सताया गया है। गोस्वामी तुलसीदास कहते थे–

ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी;
ये सब ताड़न के अधिकारी।

सेठ चंदूलाल अपनी पत्नी को तुलसीदास का यह दोहा सुना रहे थे। चंदूलाल की बीवी बोली कि बिलकुल ठीक कहते हैं–ढोल, गंवार, शुद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी–क्योंकि ये जो पांच चीजें गोस्वामी ने गिनाई हैं, उसमें से नारी तो केवल एक है बाकी चार तो तुम्हीं हो... ढोल, गंवार, शुद्र, पशु... ये चार तो तुम्हीं हो जो ताड़न के अधिकारी हो।

मैंने सुना है कि तुलसीदास की पत्नी ने भी एक ग्रंथ लिखा था, जो कभी प्रकाशित नहीं हुआ। पुरुषों के द्वारा संचालित समाज में कौन बेचारी स्त्री के ग्रंथ

को छापे? श्रीमती तुलसीदास ने उसमें दोहा लिखा था–

'ढोल, गधा, पुरुष और घोड़ा, जितना मारो उतना थोड़ा।
बेलन से पतिदेव को पीटो, सुबह-शाम लगाओ कोड़ा।।'

रजनीशपुरम, अमेरिका में शीला और उनकी सहयोगी 20 महिलाओं ने 5000 संन्यासियों को जी भर के सताया। अब मामला बराबर हो गया। अब मैं चाहता हूं कि कोई किसी को न सताए। स्त्री-पुरुष समानतापूर्ण व्यवहार करें। थोड़ा समझदार बनें।

महावीर का मार्ग संकल्प का, ध्यान का, त्याग का, कठोरता का मार्ग था। वह स्त्रियों के अनुकूल न था। स्त्रियां उस मार्ग से नहीं जा सकती थीं। बुद्ध भी संकल्पवादी थे। ये दोनों श्रमण संस्कृति के सूत्रधार थे। महिलाएं अध्यात्म में जाती हैं–समर्पण के मार्ग से, भाव से, भक्ति से, प्रेम से। इसलिए बुद्ध और महावीर का इंकार करना स्वाभाविक था। उसमें कोई निंदा नहीं है। थोड़ी व्याख्या गलत हो गई। महावीर यह नहीं कह रहे कि स्त्री पर्याय से मोक्ष नहीं होगा। वे यह कह रहे हैं कि यह मार्ग स्त्रियों को मोक्ष न ले जा सकेगा। वे अपने मार्ग की सीमा बता रहे हैं। बुद्ध करुणावश मना कर रहे हैं कि तुम व्यर्थ ही इस मार्ग पर मेहनत करोगी, पहुंचना बहुत मुश्किल से हो पाएगा।

जैन एवं बौद्ध-धर्म में बहुत मुनि तथा भिक्षु ज्ञान को उपलब्ध हुए। लेकिन साध्वियां-भिक्षुणियां ज्ञान को उपलब्ध हुईं, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस मार्ग से संभव नहीं। श्रमण संस्कृति श्रम का मार्ग है। स्त्रियों का मार्ग ब्राह्मण संस्कृति का मार्ग है-श्रद्धा का, समर्पण का।

मैं चाहता हूं कि स्त्री-पुरुष दाएं और बाएं पैर की भांति हो जाएं। अतीत में मनुष्य जाति लंगड़ा रही थी, एक पैर बहुत मोटा था, दूसरा पैर बहुत पतला था। ओशो को उलटा करना पड़ा। जो पतला पैर था उसको थोड़ा ज्यादा बल देना पड़ा, ज्यादा रक्त का प्रवाह वहाँ करना पड़ा ताकि बराबरी आ जाए। अब वह स्थिति आ गई अथवा आ जानी चाहिए, अगर आज नहीं भी आई तो हम कम से कम आशा करें कि निकट भविष्य में वह सौभाग्य की घड़ी आ जाए जब दोनों पैर बराबर हो जाएं।

सेठ चंदूलाल बहुत दुबले-पतले थे, उनकी पत्नी बहुत मोटी और भारी-भरकम। परिवार में हमेशा उपद्रव चलता रहता था। किसी ने पूछा कि आपका विवाहित जीवन कैसा है, दाम्पत्य की गाड़ी कैसी चल रही है? चंदूलाल ने कहा, 'समझ लो हमारी गाड़ी में एक चक्का साइकिल का और एक चक्का ट्रैक्टर का है। गाड़ी कैसे चल रही है, स्वयं समझ सकते हो।'

अतीत में असंतुलन था। उसको पलटना जरूरी था।

वर्तमान ओशोधारा में या ज्यादा अच्छा होगा कहना कि आने वाले भविष्य में हम उम्मीद कर सकते हैं कि स्त्री और पुरुष समतुल हो जाएं। एक-दूसरे के परिपूरक बन जाएं। एक-दूसरे की भिन्नताओं का सम्मान करना सीखें।

साधना और प्रार्थना का मिलन हो। श्रमण और ब्राह्मण संस्कृति का मिलन हो; तब जाकर पूर्ण संस्कृति निर्मित होगी। ब्राह्मण संस्कृति भी अधूरी है, श्रमण संस्कृति भी अधूरी है। अकेले प्रयास से कुछ नहीं होगा, अकेले प्रसाद से भी नहीं होगा।

प्रयास भी चाहिए और प्रभु के प्रसाद की प्रतीक्षा भी चाहिए।

बुद्धि और भाव का सम्मिलन चाहिए। तभी परम घटना घट सकेगी। विज्ञान और अध्यात्म का मिलन होना चाहिए। विज्ञान पौरुषेय है, अध्यात्म स्त्रैण है। फिर अध्यात्म के भीतर भी योग एवं भक्ति का सम्मिलन होना चाहिए। सब भांति संतुलन होना प्रेमपूर्ण एवं सौन्दर्यपूर्ण होगा। आओ, अब कीर्तन में डूबें।

प्रेमं शरणं गच्छामि!

अध्याय पांच
प्रेम की विफलता

प्रश्नसार-

1. प्रेम का असफल होना अनिवार्य है?
2. प्रेम संबंधों में जीना कोई गुनाह है?

प्रश्न—आपने प्रेम ऊर्जा के सात रंग समझाए; मोह, काम, मैत्री, प्रीति, श्रद्धा, भक्ति और भगवत्ता। इन इंद्रधनुषी रंगों की चर्चा सुनते हुए मेरे तो पैरों तले जमीन खिसक गई। मैं तो मोह और काम में ही पिछले 25 वर्षों से जी रहा था और इसी को ओशो की देशना मानकर प्रसन्न था। आप की बातें सुनकर उदासी ने घेर लिया है। मैं व्यथित हो गया हूं। समझ नहीं आ रहा कि मैं गलत हूं या आप ओशोधारा में कुछ मोड़ लाने की कोशिश कर रहे हैं? कृपया स्पष्ट करें कि क्या आप सांसारिक प्रेम के खिलाफ हैं? क्या वह कभी सफल नहीं हो सकता? प्रेम के प्रति इतनी निराशावादी दृष्टि आप क्यों दे रहे हैं?

- कमलकांत मिश्रा, चंडीगढ़

उत्तर : एक चुटकुला पहले सुना दूं। फिर इस गंभीर प्रश्न का उत्तर दूंगा। मुल्ला नसरुद्दीन खूब शराब पिया करता था, एक बोतल प्रति रात्रि। रोज शराबखाने में बैठा रहता था। गांव का जो मौलवी था, उसने सोचा कि मुल्ला को जाकर समझाए; कहा कि 'नसरुद्दीन, तुम अपना स्वास्थ्य बरबाद कर रहे हो। इतनी शराब पीते हो मुसलमान होकर, तुम्हें शर्म नहीं आती? कभी कुरान पढ़ी या नहीं?' नसरुद्दीन ने कहा, 'अभी तक तो नहीं पढ़ी'। तो मौलवी ने कहा, 'तुम ऐसा करो एक बार हजरत मुहम्मद साहब का हुक्म पढ़ो तो सही, कुरान में क्या लिखा है शराब के बारे में! तुम्हें खुद समझ में आ जाएगा कि अल्लाह मियां ने क्या पैगाम भेजा था?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'जरूर! आप कहते हैं तो जरूर पढ़ूंगा।'

दूसरे दिन, जांच करने के लिए मौलवी फिर शराबघर पहुंचा कि आज तो निश्चित रूप से कोई परिणाम हुआ होगा। क्योंकि कुरान में तो साफ मनाही है शराब पीने की। वहाँ देखा तो नसरुद्दीन दो बोतलें लिये बैठा था। रोज तो एक बोतल पीता था, आज दो-दो बोतलें उसके पास थीं। मौलवी ने कहा 'नसरुद्दीन, तुमने कुरान नहीं पढ़ी?'

नसरुद्दीन ने सलाम किया, बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया—'हजूर आपने बड़ी मेहरबानी की, मुझे कुरान में अल्लाह का पैगाम पढ़ने को कहा। उसको

पढ़कर ही दो बोतलें पी रहा हूं। कुरान में साफ-साफ लिखा है कि जी भरकर शराब पीयो। मुझे तो पता ही नहीं था कि धर्मग्रंथ में ऐसा उपदेश है। बड़ी मेहरबानी आपकी।'

मौलवी भी थोड़ा हैरान हुआ कि कुरान में कहाँ लिखा है शराब पीने के लिए?

नसरुद्दीन ने कहा 'मैं कुरान साथ में ही लाया हूं।' नसरुद्दीन ने अपने बैग में से कुरान निकालकर दिखाई, 'यह देखिये, यह लिखा हुआ है, मुहम्मद साहब कह रहे हैं–खूब शराब पीयो।' मौलवी ने देखा, उसने कहा, 'यह तो अधूरा वाक्य है, पेज पलटो तो सही। यहाँ तो पेज खतम हो गया... खूब शराब पीयो... जरा पीछे पलटो। पीछे लिखा हुआ है कि खूब शराब पीयो तो पक्का है कि तुम नरक जाओगे। जीवन में भी दुख पाओगे और मरने के बाद भी बहुत यातना झेलोगे। यह पूरा वाक्य है।

नसरुद्दीन ने कहा 'हमने तो पेज पलटा ही नहीं, हमने तो अभी यहीं तक पढ़ा था। जितना हमने पढ़ा, उतना हम फॉलो कर रहे हैं। कुरानशरीफ की बात मान कर ही चल रहे हैं। हमने जिंदगी 25 साल व्यर्थ ही गंवाई, एक ही बोतल पीते रहे। पहले से पता होता तो हम पानी पीना ही छोड़ देते। सिर्फ शराब ही पिया करते। यह तो धार्मिक बात है।' मौलवी ने कहा, 'और पेज के पीछे जो लिखा है वह?' नसरुद्दीन ने कहा 'वह तुमने पढ़ा है, उसे तुम फॉलो करो। मैंने जहाँ तक पढ़ा, जहाँ तक मुझे समझ आया, वहाँ तक मैं पालन कर रहा हूं, धर्मग्रंथ का आदेश मान रहा हूं।'

जिन मित्र ने यह सवाल पूछा है, मैं उनसे कहना चाहता हूं, आपने भी ओशो को शायद ऐसा ही कुछ पढ़ा है। नसरुद्दीन के समान आधा-अधूरा। ओशो क्या चाहते हैं? वे क्यों प्रेम के पक्ष में बोलते हैं? शायद आपने पूरी बात नहीं सुनी, आधी बात सुनी है। इसलिए आपके प्रश्न का उत्तर मैं ओशो की ही किताब 'अथातो भक्ति जिज्ञासा', भाग-2, के दूसरे प्रवचन से पढ़कर सुनाता हूं। करीब-करीब ऐसा ही प्रश्न ओशो से पूछा गया है, आप सीधा उन्हीं का उत्तर सुन लीजिए।

ओशो–"इस जगत का प्रेम तो चैतन्य कीर्ति, असफल होगा ही। इसकी असफलता से ही उस जगत का प्रेम जन्मेगा। बीज तो टूटेगा ही, तभी तो वृक्ष का जन्म होगा। अंडा तो फूटेगा ही तभी तो पक्षी पंख पसारेगा और आकाश में उड़ेगा।

इस जगत का प्रेम तो केवल बीज है। पत्नी का प्रेम, पति का प्रेम, भाई का, बहन का, पिता का, मां का... इस जगत के सारे प्रेम, बस प्रेम की शिक्षणशाला हैं। यहाँ से प्रेम का सूत्र सीख लो, लेकिन यहाँ का प्रेम सफल होने वाला नहीं है। यह तो टूटेगा ही। टूटना ही चाहिए। यही सौभाग्य है। और जब इस जगत का प्रेम टूट जाएगा और इस जगत के प्रेम से तुम मुक्त हो गए, इस जगत के विषय से तुम बाहर हो गये, तो वही प्रेम परमात्मा की तरफ बहना शुरु होता है। वही प्रेम भक्ति बनता है। वही प्रेम प्रार्थना बनता है। हमारी इच्छा होती है कि हमारा प्रेम कभी टूटे न।

'कभी तिलिस्म न टूटे मेरी उम्मीदों का।
मेरी नज़र पे यही परदा-ए-शराब रहे।'

हम तो चाहते ही यही हैं कि यह परदा पड़ा रहे, टूटे न। यह जादू न टूटे। लेकिन यह जादू टूटेगा ही, क्योंकि यह जादू है, सत्य नहीं है। कितनी देर चलाओगे? जितनी देर चलाओगे, उतना ही पछताओगे। जितनी जल्दी टूट जाए उतना सौभाग्य समझो। क्योंकि यहाँ से आंखें मुक्त हों तो आंखें आकाश की तरफ उठें; बाहर से मुक्त हों तो भीतर की तरफ जाएं।

'हब्से तलब में ग़म की कड़ी धूप ही मिली,
जुल्फों की छांव चाह रहे थे किसी से हम।'

यहाँ कोई जुल्फों की छांव नहीं मिलती। यहाँ तो सिर्फ कड़ी धूप ही मिलती है। यहाँ तो तुम जिनको प्रेम करोगे उन्हीं से दुख पाओगे। यहाँ प्रेमी दुखी ही होता है। सुख के सपने भर देखता है! जितने सपने देखता है उतनी ही बुरी तरह सपने टूटते हैं। इसलिए तो बहुत से लोगों ने तय कर लिया है कि सपने ही न देखेंगे। प्रेम का सपना न देखेंगे, विवाह कर लेंगे। न रहेगा सपना, न टूटेगा कभी। इसलिए तो लोग विवाह पर राजी हो गये। समझदार लोगों ने प्रेम को हटा दिया और लोगों को विवाह के लिए राजी कर लिया ।

लेकिन विवाह का खतरा है एक–सपना नहीं टूटेगा, यही खतरा है। सपना टूटना ही चाहिए। सपना होना चाहिए और टूटना चाहिए। बड़ा सपना देखो। डरो मत; मगर टूटेगा, यह याद रखो। रूमानी सपने देखो, मगर टूटेंगे, यह स्मरण रखो। यहाँ जुल्फों की छांव मिलती ही नहीं। यहाँ हर जुल्फ की छांव में धूप मिलती है, कड़ी धूप मिलती है।

'दाग-ए-दिल से भी रोशनी न मिली
यह दीया भी जला कर देख लिया।'

जलाओ दीया, जलाना उचित है। इसलिए मैं प्रेम के खिलाफ नहीं हूं और इसलिए मेरी बात तुम्हें बड़ी बेबूझ मालूम पड़ती है। तुम्हारे तथाकथित संतों ने तुमसे कहा है कि प्रेम के विपरीत हो जाओ। मैं प्रेम के विपरीत नहीं हूं। मैं कहता हूं प्रेम करो, देखो, जानो, जलो, भुनो; हालांकि प्रेम का सपना टूटेगा। और अगर ठीक से तोड़ना हो यह सपना, तो ठीक से उसमें जाना जरूरी है।

भोग में उतरोगे तभी योग का जन्म होगा; राग में जलोगे तो विराग की सुगंध उठेगी। जो राग में नहीं जला, वह विराग से वंचित रह जाएगा और जिसने भोग की पीड़ा नहीं जानी वह योग का रस कैसे पीयेगा?

इसलिए मेरी बातें तुम्हें बहुत बार उलटी मालूम पड़ती हैं। मैं कहता हूं अगर योगी बनना है तो भोगी होने से डरना मत। भोग ही लेना। उसी भोग के विषाद में से तो योग का सूत्रपात होगा। जब तुम देखोगे, देखोगे, देखोगे... दुख पाओगे, जलोगे, तड़पोगे; सब तरह से देखोगे–

'दाग़-ए-दिल से भी रोशनी न मिली
यह दीया भी जला कर देख लिया।'

जब रोशनी मिलेगी नहीं, अंधेरा बना ही रहेगा.....एक दिन तुम सोचोगे कि मैं जो दीया जला रहा हूं वह दीया जलने वाला नहीं है। अब मैं तलाश करूं उस दीये की जो जलता है। और वह दीया सदा से जल रहा है। जरा लौटोगे पीछे और उसे जलता हुआ पाओगे। वह दीया तुम हो। वह दीया तुम्हारे भीतर है।

'बुझ गये आरजू के सब चिराग
बस एक अंधेरा है चारसू बाकी।'

और जब वासना के चिराग बुझ जाएंगे तो निश्चित गहन अंधकार में पड़ोगे।

उसी गहन अंधकार में से तलाश पैदा होती है। आदमी टटोलना शुरू करता है।

कहीं पे धूप की चादर बिछा के बैठ गये
कहीं पे शाम सिरहाने लगा के बैठ गये।
खड़े हुए थे अलावों की आंच लेने को
सब अपनी हथेली जला के बैठ गये।
दुकानदार तो मेलों में लुट गये यारों
तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गये।
ये सोच के कि दरख्तों में छांव होती है
यहाँ बबूल के साये में आके बैठ गये।

इस संसार को तुम बबूल का वृक्ष पाओगे। देर-अबेर यह अनुभव आएगा ही। ये सोच के कि दरख्तों में छांव होती है, यहाँ बबूल के साये में आके बैठ गये... लेकिन यह बात तुम्हारे अनुभव से आनी चाहिए। उधार अनुभव काम नहीं आएगा। उधार ज्ञान कूड़ा-करकट है। उसे जितनी जल्दी फेंक दो, उतना बेहतर। अपना थोड़ा सा ज्ञान पर्याप्त है, एक कण भी अपने ज्ञान का पर्याप्त है-रोशनी के लिए! और शास्त्रों का बोझ जरा भी काम का नहीं। शास्त्र से बचो। शास्त्र को हटाओ। जीवन को जीयो।

यह जीवन का सपना है। यह टूटेगा, इसके टूटने में ही हित है। इसके टूटने में सौभाग्य है, वरदान है। क्योंकि यह सपना टूटे तो परमात्मा से मिलन हो, संसार से विराग लगे तो परमात्मा से राग जगे।

दो तरह के लोग हैं- जिनका संसार से राग है, उनका परमात्मा से विराग होता है; क्योंकि राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिन्होंने संसार की तरफ मुंह कर लिया, परमात्मा की तरफ उनकी पीठ हो गई। संसार के सम्मुख हो गये परमात्मा से विमुख हो गये। संसार के प्रति राग, परमात्मा के प्रति विराग। जिस दिन संसार के प्रति विराग पैदा होगा, उस दिन तुम एकदम रूपांतरित हो जाओगे। उस दिन तुम पाओगे, परमात्मा के प्रति राग का जन्म हो गया। उस राग का नाम भक्ति है- अथातो भक्ति जिज्ञासा।"

कमलकांत मिश्रा ने प्रश्न पूछा है, उनसे कहना चाहूंगा, 'तुमने ओशो की आधी ही बात सुनी, पूरी बात नहीं सुनी'।

निश्चित रूप से बच्चों को खिलौने पकड़ाने होते हैं। जब नए-नए साधक-साधिका ओशो के पास आए तो वे बहुत बचकाने थे। बच्चों को खिलौने पकड़ाए, लेकिन इस उम्मीद में कि एक दिन बच्चे बड़े बनेंगे, मैच्योर होंगे और खिलौने छूट जाएंगे। इस परिपक्वता की आशा में खिलौने दिये जाते हैं। प्रौढ़ता की उम्मीद की जाती है।

मैं कीचड़ के खिलाफ नहीं हूं। लेकिन कमल उगे, इसके पक्ष में जरूर हूं। और कीचड़ में ही कमल उगता है। कीचड़ के अनुभव से ही कमल का फूल ऊपर उठता है। कमल को प्रेम करने वाले कीचड़ के खिलाफ कैसे होंगे? इसलिए तो मैंने सात रंगों की बात की। उसमें मोह, प्रेम, काम, सबको ले लिया। वहाँ से शुरुआत है। लेकिन वह कीचड़ है, कमल की तरफ नजर उठाओ, थोड़े ऊपर उठो। 25 वर्ष बहुत होते हैं; और कब तक कीचड़ में पड़े रहोगे?

तुम बच्चों की तरह व्यवहार कर रहे हो, 25 साल यानी एक चौथाई से ज्यादा जिंदगी निकल गई। सामान्यतया उम्र तो 70-75 साल होती है, लगभग एक तिहाई जिंदगी तो तुम्हारी गई। कमल के फूल कब खिलेंगे फिर? नहीं, तुम अपने कीचड़ के लिए तर्क मत दो कि तुम ओशो के ठीक शिष्य हो और यहाँ आचार्य लोग कुछ गलत शिक्षा दे रहे हैं। तुम पूछ रहे हो कि मैं गलत हूं या आप आचार्यगण ओशोधारा में कुछ मोड़ लाने की कोशिश कर रहे हैं। कृपया स्पष्ट करें। आप लोग सांसारिक प्रेम के खिलाफ क्यों हैं?

खिलाफ कौन है? अगर मैं कीचड़ के खिलाफ होता तो मोह को, काम को इंद्रधनुष के सात रंगों में क्यों गिनाता? लेकिन एक बात जरूर कहूंगा कि वहाँ पर अटक मत जाना। अटकने के जरूर खिलाफ हूं।

महावीर ने कहा है- धर्म गति का तत्व है। बड़ी अद्‌भुत परिभाषा की है। धर्म की ऐसी परिभाषा किसी ने नहीं की। धर्म यानी गति का तत्व और अधर्म यानी जड़त्व, अगति का तत्व। वह चीज जो तुम्हें अटका ले, रोक ले, वह अधर्म है। और जो तुम्हें विकासमान करे, आगे बढ़ाये, वह धर्म है।

मैं कहना चाहूंगा, मोह और काम से आगे बढ़ो। वह धर्म होगा। ऊपर की तरफ चलो। और भी रंग हैं इंद्रधनुष में। उनका आनंद कब लोगे? तुम कह रहे हो

कि मैं तो 25 वर्षों से बहुत प्रसन्न था। यही मानकर कि ओशो की देशना का पालन कर रहा हूं। तुम तो नसरुद्दीन निकले। मैं खोज ही रहा था कि मुल्ला नसरुद्दीन रहता कहाँ है? अंदाज तो था, कहीं हरियाणा-पंजाब में ही होगा। ठीक जगह मिल गए, चंडीगढ़ में। अब थोड़े प्रौढ़ बनो, 25 वर्ष बहुत होते हैं।

प्रश्न—कल आपने अकेंद्रित, अहंकेंद्रित, परकेंद्रित, मिश्रित, करुणापूर्ण, आत्मकेंद्रित, सर्वकेंद्रित एवं केवल प्रेम-प्रेम के इन आयामों की चर्चा की। आप आध्यात्मिक प्रेम के हिमाच्छादित शिखरों की ओर संकेत करते हैं; किंतु हम अंधेरी घाटी में जीने वाले सामान्य मनुष्य शिखर से यात्रा कैसे शुरू कर सकते हैं? क्या बुद्धत्व के पूर्व साधारण प्रेम संबंधों में जीना कोई गुनाह है? मैं आपकी बात सुनकर अपराध बोध से भर गया हूं। कृपया मार्गदर्शन करें।

नहीं, साधारण प्रेम संबंध गुनाह नहीं, बुद्धत्व की तैयारी है। वे तुम्हें जगाएंगे। यद्यपि खूब दुख देंगे, पीड़ा देंगे, पर उसी संताप में तुम पकोगे, निखार आएगा। कुम्हार का कच्चा घड़ा अगर अग्नि से न गुजरे तो कच्चा ही रह जाएगा।

जरूरी है दुख की अग्नि भी, प्रेम एक तपस्या है। तुम्हें खूब तपाएगी। लेकिन वह तपन काम आएगी। कच्चे घड़े को अग्नि से बचाकर भागना मत। तुम पुछते हो कि बुद्धत्व के पूर्व साधारण प्रेम संबंधों में जीना क्या कोई गुनाह है? नहीं, बिल्कुल भी नहीं। लेकिन उसी में अटक जाना जरूर गुनाह है। रुकना भर मत।

पकना, तपना, जलना और उससे ऊपर उठना। उबरना। तुम कहते हो कि मैं अपराध-बोध से भर गया हूं। मैं तुम्हें आत्म-गरिमा से भरना चाहता हूं, अपराध बोध से नहीं। तुमने मेरी बात को कुछ गलत समझ लिया। मैं कह रहा हूं, 'बहिर्मुखी प्रेम को अंतर्मुखी बनाओ। प्रेम को आत्मकेंद्रित करो, ताकि आत्म-गरिमा से भर सको।'

जब तुम दूसरे से प्रेम पाना चाहते हो, तो अपना ही अपमान करते हो। मैं तुम्हें आत्म-गरिमा और आत्म-गौरव सिखा रहा हूं। आत्म-सम्मान से भरो, सेल्फ-रेस्पेक्ट से भरो, स्वाभिमानी बनो। तुम क्यों भिखमंगों की तरह प्रेम मांगते फिरते हो? थोड़े स्वाभिमानी बनो। स्वकेंद्रित हुए बगैर स्वभिमान पैदा नहीं हो सकता। 'स्व' का पता ही नहीं तो स्वाभिमान कैसे जन्म सकता है?

तुम पूछते हो, 'हम अंधेरी घाटी में रहने वाले सामान्य मनुष्य, शिखर से यात्रा कैसे शरु कर सकते हैं? तुमसे कौन कह रहा है कि शिखर से यात्रा शुरु करो? यात्रा तो वहीं से शुरु करनी होगी जहाँ तुम हो। अंधेरी घाटी से ही शुरु करनी होगी। लेकिन यात्रा तो शुरु करो, सिर्फ इतना ही कह रहा हूं, 'यात्रा शुरु करो।' और तुम सामान्य मनुष्य हो, यह भ्रांति कहाँ से पाल ली? हर आदमी असाधारण, अनूठा और अद्वितीय है।

बड़े उंचे और अति उज्जवल शिखर भी हैं। उस तरफ थोड़ी नजर उठो। तुम अपनी अंधेरी घाटी में ऐसे मग्न न हो जाओ कि शिखर को भूल ही जाओ। थोड़ा ऊपर देखो।

मैंने सुना है कि एक सूफी फकीर को कट्टरपंथी मुसलमानों ने फांसी देकर मार डाला था। जब उसे फांसी दे रहे थे ऊंचे तख्त पर खड़ा करके, बहुत भीड़ इकट्ठी थी। वह मुस्कुराने लगा। लोगों ने पूछा, 'हंसते क्यों हो?' उसने कहा, 'चलो मुझे फांसी पर चढ़ता देखने के लिए कम से कम कुछ लोगों की तो गर्दनें ऊपर उठीं! वरना लोग ऊपर देखते ही नहीं हैं। गर्दन उठाना ही भूल गए हैं। गर्दने अकड़ गई हैं।'

महानगरों में जाकर पूछो, मुम्बई और कोलकाता में, लोगों ने कब से चांद नहीं देखा है? बहुत लोगों ने शायद कभी देखा ही न हो चांद। उन्होंने फिल्मों में

देखा होगा, पेंटिंग में देखा होगा। वास्तविक चांद-तारों की तरफ तो नजरें ही उठनी बंद हो गई हैं।

आधुनिक सभ्य लोगों में से बहुतों को पता ही नहीं कि सितारों से भरी अमावस्या की काली रात कितनी सुंदर होती है! कभी देखी ही नहीं, नजरें बिल्कुल जमीन में गड़ गई हैं, नीचे ही नीचे देखती हैं। थोड़ा ऊपर भी देखो। तुम पूछते हो, 'आप आध्यात्मिक प्रेम के हिमाच्छादित शिखरों की ओर संकेत करते हैं किंतु हम अंधेरी घाटी में जीने वाले सामान्य मनुष्य शिखर से यात्रा कैसे शुरु कर सकते हैं?'

तुमसे शिखर से यात्रा शुरु करने को कह भी नहीं रहा हूं। यात्रा तो वहीं से आरंभ होगी जहाँ तुम खड़े हो। कम से कम शिखर पर नजर तो रखो, मंजिल का खयाल तो हो कि जाना कहाँ है? गंतव्य पर दृष्टि हो तभी तुम इस घाटी के पार हो पाओगे। प्रेम को भोगो। दुख ही हाथ आएगा, सुख तो केवल सपना है। लगता है मिलेगा जैसे क्षितिज को पकड़ने के लिए कोई दौड़े। लगता है कि क्षितिज हाथ आया, अब हाथ आया।

अभी देखते थे न चैतन्य कीर्ति का प्रश्न कि क्या सांसारिक प्रेम का असफल होना अनिवार्य है? यह प्रश्न ऐसा है कि कोई पूछे 'क्या क्षितिज कभी न मिलेगा? पक्का है, न मिलना अनिवार्य है? औरों को नहीं मिला तो क्या हुआ हम तो कोशिश कर लें। हमें तो लगता है मिल जाएगा।' तो ठीक, कोशिश करो। दौड़ो, गिरो, अपने हाथ-पैर तोड़ो। जब तक तुम्हें अकल न आ जाए। जब जागे, तभी सवेरा।

ओशो का एक और प्रवचनांश मैं पढ़कर सुनाता हूं।

'पिय को खोजन मैं चली' प्रवचनमाला में एक व्यक्ति ने इसी से मिलता-जुलता सवाल पूछा है। अगर एक पुरुष अपनी पत्नी से कामतुष्टि नहीं पाता है तो वह दूसरी स्त्रियों के पास जाता है। ऐसा करने से वह अपराध भाव अनुभव करता है क्योंकि उसे और सब सुविधाएं तो पत्नी से मिलती हैं और वह उन बातों के लिए उसे चाहता भी है। जब वह अपराध भाव अनुभव करता है तो उसका मन तनाव से घिर जाता है। उसे क्या करना चाहिए कि उसका मन

तनावग्रस्त न हो। अथवा क्या उसे अपनी काम तृप्ति के लिए कहीं और जाना बंद कर देना चाहिए?

जरा सुनो, इसके उत्तर में ओशो ने क्या कहा है–

'तुम्हें यह बात जल्दी से जल्दी समझ में आ जानी चाहिए कि कोई पुरुष किसी स्त्री को तृप्त नहीं कर सकता, कोई स्त्री किसी पुरुष की वासना तृप्त नहीं कर सकती। लेकिन यह अनुभव से ही समझ में आ सकता है। और जिस दिन यह बात समझ में आती है उसी दिन से जीवन में ध्यान की शुरुआत होती है। उसी दिन जीवन में क्रांति आती है। उसी दिन तुम वासना के पार उठना शुरु होते हो।

ध्यान है क्या? ध्यान सिर्फ यही है कि मन दौड़ाता है, भरमाता है, भटकाता है, मृग मरीचिकाओं में—और आगे, और आगे, आगे, क्षितिज की तरह ऐसा लगता है—अब तृप्ति, अब तृप्ति, जरा और चलना है, थोड़ा सा और... और क्षितिज कभी आता नहीं, मौत आ जाती है। तृप्ति कभी नहीं आती, कब्र आ जाती है।

'ध्यान इस बात की सूझ है कि इस दौड़ से कुछ न होगा। ठहरना है, मन के पार जाना है। मन के साक्षी बनना है।

'श्री मोदी, अगर सच में ही चाहते हो वासना से तृप्ति, मुक्ति, वासना के जाल से छुटकारा हो जाए—तो न तुम्हारी पत्नी दे सकती है न किसी और की पत्नी दे सकेगी, न कोई वेश्या दे सकेगी। कोई भी नहीं दे सकता है। यह घटना तो तुम्हारे भीतर घटेगी। यह महान अनुभव तो तुम्हारे भीतर शांत, मौन शून्य होने में ही संभव हो सकेगा। मगर जब तक यह न हो तब तक मैं दमन के पक्ष में नहीं हूं। मैं कहता हूं तब तक जीवन को जीयो, भोगो। उसके कष्ट भी हैं, उसके क्षणभंगुर सुख भी हैं। कांटे भी हैं, फूल भी हैं वहाँ। दिन भी हैं और रातें भी हैं वहाँ। उन सबको भोगो, उसी भोग से आदमी पकता है। और उसी पकने से, उसी प्रौढ़ता से, एक दिन छलांग लगती है ध्यान में।'

ओशो हमें हिमाच्छादित शिखर की ओर इशारा कर रहे हैं, वहाँ जाना है। अपनी मंजिल का खयाल रखना। कोल्हू के बैल की तरह मार्ग पर ही

गोल-गोल मत घूमते रहना। ओशो ने अन्यत्र कहा है– 'प्रेम दान है भीख नहीं। प्रेम की आकांक्षा दुखी व्यक्ति का लक्षण है। केवल आनंदित व्यक्ति ही प्रेम बांट सकता है।'

यात्रा तो वहीं से शुरु होगी, जहाँ तुम खड़े हो। लेकिन कम से कम याद तो रखो कि यात्रा करनी है निम्न तल से उच्च तल की ओर। काम एवं मोह वाले प्रेम से प्रार्थना और भक्ति वाले प्रेम की ओर।

ओशो की सुप्रसिद्ध किताब का नाम है, 'संभोग से समाधि की ओर।' अधिकांश लोग इसके शीर्षक का अर्थ भी नहीं समझते। इशारा कहाँ है? -समाधि की ओर, घाटी से शिखर की ओर।

निश्चित रूप से हम जहाँ हैं, कामवासना की दुनिया में, यात्रा तो वहाँ से ही शुरु होगी। लेकिन यहाँ अटक नहीं जाना। समाधि की ओर जाना है। गंतव्य का खयाल होना चाहिए। जैसे तुम ड्राइविंग करते हो। समझो कि माधोपुर से दिल्ली की ओर कार चला रहे हो तो खयाल रखना पड़ेगा कि दिल्ली की दिशा में जा रहे हो या नहीं? बीच-बीच में रास्ते में हल्की सी नजर पड़ती रहेगी मील के पत्थर पर, कि लिखा है दिल्ली 50 कि.मी., फिर और ड्राइविंग की, आया दिल्ली 40 कि.मी., तो पता चल रहा है कि ठीक दिशा में जा रहे हो। कहाँ से तुमने यात्रा शुरु की? वह एक बात। किसकी ओर जाना है वह और भी महत्त्वपूर्ण बात। हमेशा परमात्मा की ओर जाना है; काम से राम की ओर, शिला से शिव की ओर, कीचड़ से कमल की ओर, वासना से प्रार्थना की ओर, मूलाधार से सहस्रार की ओर।

ओशो की एक पुरानी किताब का नाम है–'सूर्य की ओर उड़ान'। जरा ऊपर की तरफ देखो, रोशनी की तरफ। हमारी अंधेरी घाटी के अतिरिक्त एक जगत और भी है। ओशो की एक अन्य किताब का शीर्षक मुझे बड़ा प्यारा लगता है–'उड़ियो पंख पसार'। हम सब अपने घोंसलों से चिपक कर बैठ गये हैं। कब पंख पसारोगे? कब लंबी उड़ान भरोगे, 'अज्ञात की ओर' चलोगे? कि सिर्फ ज्ञात में ही अटके रहोगे? अपनी नजरों को थोड़ा ऊपर उठाओ। और इसलिए बुद्धों की बातों को हम बर्दाश्त नहीं कर पाते। क्योंकि वे जिस ऊंचाई की बात बताना चाह

रहे हैं, उसकी तुलना में हम जहाँ खड़े हैं, वह स्थिति बहुत नीचे की हो जाती है।

बुद्धों की उपस्थिति में हम अपमान-सा महसूस करते हैं। इसलिए सारे जगत में जहाँ कहीं जागृत पुरुष होते हैं, भीड़ उनके खिलाफ हो जाती है। इसका मनोविज्ञान समझने जैसा है, यह दुर्घटना क्यों घटती है? हजारों सालों से इसकी पुनरावृत्ति होती रही है। कारण सिर्फ इतना है कि बुद्धपुरुष आसमान की बातें करते हैं। और उसकी तुलना में हमें अचानक पता चलता है कि हम तो बिलकुल जमीन पर रेंगते हुए कीड़े-मकोड़े हैं।

पहले हम प्रसन्न थे। हम इसी अंधेरी घाटी को दुनिया समझ रहे थे, कि बस यही है जीवन। काम संबंधों में जीते रहो, यहीं लड़ते-झगड़ते रहो, यही है दुनिया। लेकिन अब, अचानक एक व्यक्ति बीच में उठकर कहता है कि एक और लोक भी है जहाँ अहिंसात्मक प्रेम हो सकता है, करुणा हो सकती है। तब हमें खीज पैदा होती है कि फिर हम क्या कर रहे हैं? इतने समय से क्या भाड़ झोंक रहे हैं?

एक अपमान सा लगता है, इंसल्ट महसूस होती है और इसलिए हम बुद्धपुरुषों के बहुत खिलाफ हो जाते हैं। जब तक वे मौजूद रहेंगे हमें चोट पहुंचाते ही रहेंगे, उनकी उपस्थिति मात्र हमें चोट पहुंचाएगी। वे ऊपर के शिखर से पुकारते हैं। हमारी घाटियों में आवाज आती है और हमें क्रोध आता है। उनके शिखर की पुकार की वजह से हमें घाटी का अहसास होना शुरु होता है। जब उन्होंने नहीं पुकारा था, हमने ऊपर की तरफ देखा ही न था। हम इस घाटी को, अंधेरे को ही सब कुछ समझ रहे थे। यही एकमात्र जीवन था और चारों तरफ की भीड़ भी अपने ही जैसी थी कहीं कोई तुलना संभव नहीं थी।

जब भी कोई बुद्ध पुरुष आता है अचानक तुलना पैदा हो जाती है। और उसकी वजह से बहुत क्रोध जन्मता है। क्योंकि यदि उसकी बात मानो तो यात्रा करनी पड़ेगी। और यात्रा दुर्गम है। कोई हंसी-खेल नहीं है। इस अंधेरी घाटी से गौरीशंकर तक पहुंचना दुर्गम है। बड़े मजे से अपने आलस्य में जी रहे थे, अंधेरे में। अब एक चुनौती मिल गई। इस चुनौती को स्वीकारना होगा। एक व्यक्ति उतने ऊपर पहुंच गया है; अब हमें भी पहुंचना होगा। नहीं तो हम

आत्म-अपमान से भर जाएंगे। यह बात पीड़ा पहुंचाती है इसलिए बहुत लोग बुद्धपुरुषों के इतने खिलाफ हो जाते हैं। थोड़े से लोग ऊपर की तरफ चढ़ना शुरु करते हैं। लेकिन बड़ी भीड़ हमेशा नाराज हो जाती है। उनकी उपस्थिति को बरदाश्त नहीं कर पाती।

भीड़ कह रही थी प्रेम यानी वासना, प्रेम यानी कामना। और वह व्यक्ति शिखर से चिल्ला कर कह रहा है- प्रेम यानी परमात्मा, प्रेम है प्रार्थना। कहीं कुछ तालमेल नहीं बैठता। लगता है किसी और ही लोक की बात है; प्रेम है परमात्मा! विचित्र सी बात लगती है। हम जिस प्रेम को जानते हैं वह तो नरक में ले जाता है, उसे तो परमात्मा नहीं कहा जा सकता। वह तो घृणा, हिंसा और शोषण में ले जाता है। उसे कैसे परमात्मा कहें? मैं आपसे नहीं कहता कि आप इस उच्चस्तरीय प्रेम से यात्रा शुरु करें। यात्रा तो वहीं से शुरु करनी होगी, जहाँ आप हैं। लेकिन खयाल तो हो कि अंततः कहाँ जाना है।

एक और लोक भी है प्रेम का।

प्रेमरूपी 'सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण' स्वीकारें। 'प्रेम के पंख' फैलाएं। जीवन की बगिया में 'प्रेम के फूल' खिलाएं।

सितारों के आगे जहां और भी हैं!

अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं!!

अथ प्रेमं शरणं गच्छामि!!!

अध्याय छः

लौकिक से अलौकिक प्रेम की ओर

प्रश्नसार-

1. आध्यात्मिक प्रेम जागने पर सांसारिक प्रेम छूट जाएगा?
2. प्रेम से संतुष्टि की झलक मिलती है, तृप्ति क्यों नहीं?
3. संसार से विमुख हुए बिना प्रभु के सम्मुख होना चाहता हूं!
4. मैं दिन भर समाधि में डूब सकूं; ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

प्रश्न—दो व्यक्तियों के बीच प्रेम संबंध कैसा हो जिससे लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर जाने में सहयोग मिले? आध्यात्मिक प्रेम जब घटेगा तब क्या सांसारिक प्रेम छूट जाएगा?

नहीं, जब उच्चस्तरीय प्रेम घटेगा, उसमें निम्नस्तरीय प्रेम समाविष्ट हो जाएगा, सम्मिलित हो जाएगा। लेकिन इसका विपरीत सही नहीं है। निम्नस्तरीय प्रेम में उच्चस्तरीय प्रेम शामिल नहीं है। जैसे गौरीशंकर का शिखर है, उसमें पूरा का पूरा हिमालय शामिल है। लेकिन घाटी में गौरीशंकर का शिखर शामिल नहीं है।

हमेशा याद रखना श्रेष्ठतर में निम्नतर शामिल है। निम्नतर के आधार पर ही श्रेष्ठतर खड़ा होता है। लेकिन निम्न में श्रेष्ठ शामिल नहीं है। समझो एक मंदिर बन रहा है, नींव खोदी गई, आधारशिला रखी गई जमीन के नीचे और फिर वह भवन पूरा बना। और उस मंदिर के ऊपर स्वर्ण कलश रखा गया। स्वर्ण कलश के होने में बुनियाद के पत्थरों का हाथ है। लेकिन बुनियाद में, स्वर्ण कलश शामिल नहीं है। बुनियाद अकेली बुनियाद बनकर ही रह जा सकती है। मंदिर अधूरा भी छूट सकता है। केवल नींव भर रह जाए। कोई जरूरी नहीं है कि स्वर्ण कलश स्थापित हो ही। बुनियाद का पत्थर अकेला पड़ा रह सकता है, उसमें स्वर्ण कलश शामिल नहीं है। लेकिन स्वर्ण कलश के होने में दीवारों का, खंभों का, बुनियाद का, सबका योगदान है। कलश के होने में सब कुछ सम्मिलित है।

इसलिए आध्यात्मिक या अलौकिक प्रेम, जिसकी मैं चर्चा कर रहा हूं उसमें सांसारिक प्रेम सम्मिलित है लेकिन अगर तुम केवल सांसारिक प्रेम में जी रहे हो तो उसमें आध्यात्मिक प्रेम सम्मिलित नहीं है।

एक दूसरे उदाहरण से समझो, कमल के खिलने में तो कीचड़ का हाथ अनिवार्यतः है, बिना कीचड़ के कमल नहीं खिल सकता। लेकिन तालाब में अकेली कीचड़ हो सकती है, यह संभव है। बिना कमल के भी कोई तालाब हो सकता है-सिर्फ कीचड़ ही कीचड़, गंदी बदबूदार कीचड़। कमल का

होना कोई जरूरी नहीं है। इसलिए कीचड़ में कमल सम्मिलित नहीं है। लेकिन कमल में तो कीचड़ सम्मिलित है। कमल उसी कीचड़ का रूपांतरण है। वही तत्व, वही मिट्टी, वही पानी जो कीचड़ में था; वही रूपांतरित होकर कमल का फूल बन गया। कीचड़ दुर्गंध दे रही थी, वही दुर्गंध कमल की सुगंध बन गई। उसमें दुर्गंध का भी योगदान है। अकेली दुर्गंध हो सकती है, अकेला कीचड़ हो सकता है, अकेला बुनियाद का पत्थर हो सकता है। तो अलौकिक प्रेम में लौकिक प्रेम सम्मिलित है। लेकिन लौकिक प्रेम में अलौकिक प्रेम सम्मिलित नहीं है। या कह लो, संभावना की तरह बीज रूप में शामिल है।

आपने पूछा है कि दो व्यक्तियों के बीच प्रेम संबंध कैसा हो? मैं आपको खलील जिब्रान का एक वचन याद दिलाना चाहूंगा 'दि प्रॉफेट' नामक किताब से। ओशो को यह किताब अतिशय प्रिय थी। ओशो की लाइब्रेरी में लाखों किताबें हैं; लेकिन जब वे रजनीशपुरम गये तो केवल एक किताब अपने साथ ले गये थे। शेष लाइब्रेरी तो बाद में पहुंची थी। लेकिन एक किताब वह अपने साथ ले गये थे—खलील जिब्रान की 'दि प्रॉफेट'। इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि ओशो को यह किताब कितनी पसंद रही होगी। ओशो ने इस पर प्रवचन माला भी दी, बड़ी लंबी प्रवचन माला, एक महीने तक बोले। इसका शीर्षक रखा है 'दि मसाह'।

खलील जिब्रान का वचन है कि प्रेमियों को ऐसा होना चाहिए जैसे मंदिर के खंभे। एक दूसरे से दूर, फिर भी उस एक ही प्रेम की छत को सम्भाले हुए। बड़ी प्यारी उपमा है। ओशो ने जो सुंदर व्याख्यान इस पर दिया है, प्रत्येक साधक-साधिका के लिए पढ़ने जैसा है।

मंदिर के स्तंभ अगर बहुत नजदीक आ जाएं तो क्या होगा? मंदिर गिर जाएगा, छत धाराशायी हो जाएगी। अगर खंभे बहुत दूर चले जाएं? तब भी मंदिर ध्वस्त हो जाएगा। प्रेम का मंदिर बच न सकेगा। खलील जिब्रान की बड़ी प्यारी उपमा है—मंदिर के खंभों की तरह दूर भी और पास भी। दूसरे की

सीमा में अतिक्रमण मत करना। स्वयं में स्थित रहना, 'स्वस्थ' रहना।

मंदिर के खंभे अपने आप में स्थित रहते हैं। लेकिन सब मिलजुल कर उस एक मंदिर की ही गुम्बद को सम्भाले हुए हैं। प्रेम करने वाले प्रेम का मंदिर इसी प्रकार संभालते हैं। लेकिन सामान्यत: जब हम प्रेम करते हैं, हम अति निकट पहुंचना चाहते हैं किसी के। और वह अति निकटता ही जहर घोल देती है, प्रेम का मंदिर ध्वस्त हो जाता है। या, फिर हमारा मन विपरीत तर्क देता है। वह कहता है कि निकटता पसंद नहीं, तो दूर ही हट जाओ। फिर हम इतने दूर हट जाते हैं कि प्रेम का मंदिर पुन: गिर जाता है। मंदिर को गिराने के दो उपाय हैं, या तो अति दूर हो जाओ या अति निकट हो जाओ। हमारा मन इसी द्वंद्व में डोलता है; या तो हम शादी करके 24 घंटे साथ रहेंगे, एक दूसरे की जान के बिलकुल पीछे पड़े रहेंगे। या फिर झगड़ा करके तलाक कर लेंगे, सदा के लिए अलग-अलग हो जाएंगे।

क्या मध्य का कोई मार्ग नहीं हो सकता? आप पूछते हैं- दो व्यक्तियों के बीच प्रेम संबंध कैसा हो? मैं उसी मध्य मार्ग की बात कर रहा हूं। तुम अपने प्रति प्रेमपूर्ण बनो, अपने आप में स्थित रहो। दूसरा व्यक्ति तुम्हारी ऊर्जा को खींचे नहीं। और न ही तुम दूसरे व्यक्ति को उसकी स्थिति से डिगाओ। उसे अपने आप में स्थित रहने दो। तब सम्यक् मित्रता घट सकेगी। तुम अपने स्वभाव में जियो, वह अपने स्वभाव में जिये। बीच में एक दूरी भी हो, एक निकटता भी हो।

जो ऐसा परम-संतुलन साध लेगा उस व्यक्ति का प्रेम लौकिक से अलौकिक प्रेम की तरफ जाने लगेगा। सार्त्र का एक वचन ओशो ने बहुत बार उद्धृत किया है–'दि अदर इज हेल'-दूसरा नर्क है, और ओशो ने इसमें सुधार भी किया है–'दूसरा नर्क नहीं है, दूसरापन है नर्क का कारण'। यह दूसरापन क्यों पैदा होता है?

ओशो ने इसका जवाब दिया है, 'ज्यों कि त्यों धर दीन्हीं चदरिया' में। ऐसा अनूठा उत्तर दिया है जो हम सोच भी नहीं सकते। दूसरापन क्यों पैदा

होता है? ओशो कहते हैं: चूंकि तुम स्वयं को नहीं जानते। तुम्हें स्वयं की कोई अनुभूति नहीं है। इसलिए तुम्हें दूसरे, दूसरे नजर आते हैं। काश तुम स्वयं की आत्म-सत्ता को पहचान लो फिर कोई दूसरा नहीं रह जाएगा। एक ही ब्रह्म सबमें समाया हुआ है। जैसे एक सागर और अनंत लहरें उसकी छाती पर। लेकिन हर लहर में वही सागर तो लहरा रहा है। एक ही सागर है। लेकिन चूंकि वह मनुष्य रूपी लहर स्वयं के भीतर नहीं गई, उसने अपने भीतर के सागर रूपी परमात्मा को नहीं जाना इसलिए उसे अन्य लहरें अन्य दिखाई पड़ती हैं।

ओशो का यह विश्लेषण बड़ा अद्‌भुत है कि दूसरा, दूसरा इसलिए दिखाई पड़ता है क्योंकि तुम्हें अपना पता ही नहीं है कि तुम कौन हो? अपने भीतर जाओ, स्वयं को प्रेम करो, तभी तो अपने को जान पाओगे। प्रेम ही ज्ञान बनता है। स्वयं को प्रेम करो, अपने भीतर स्थित होओ और तब तुम जानोगे तुम कौन हो? फिर तुम्हें पता चलेगा यहाँ दूसरा कोई है नहीं। तब जो घटना घटती है उस घटना का नाम है अहिंसा, अथवा कहो इश्क-ए-हकीकी या अलौकिक प्रेम।

प्रश्न—प्रेम की चाह प्रत्येक मनुष्य में बचपन से लेकर बुढ़ापे तक बरकरार रहती है। पशु-पक्षियों और पौधों तक में, वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि प्रेम पाने की अभिलाषा है। जब इतनी गहरी प्यास प्रकृति ने सबको दी है तो उसको तृप्त करने का उपाय निर्मित क्यों नहीं किया? संसार में प्रेम से संतुष्टि की झलक मात्र मिलती है लेकिन तृप्ति नहीं। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की रचना परमात्मा ने क्यों की?

देव कुमार, तुम्हारी व्याख्या में भूल है। यह दुर्भाग्य नहीं, सौभाग्य है कि तुम कीचड़ से तृप्त नहीं हो पाते वरना कहीं कचरे-कूड़े के ढेर पर बैठ गए होते और संतुष्ट हो गये होते। नहीं, यहाँ संसार में संतोष घटता ही नहीं। कितने ही प्रेम संबंध तुम बना लो, तुम अतृप्त बने ही रहोगे। यह दुर्भाग्य नहीं है, तुम्हारी व्याख्या गलत है। तुम पूछ रहे हो कि ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की रचना परमात्मा ने क्यों की?

यह महासौभाग्य की घटना है कि तुम प्रेम से तृप्त हो ही नहीं सकते। यह असंभव है। अपने मन को गाली मत देना कि तुम्हारा मन कहीं संतुष्ट नहीं होता। मन को धन्यवाद दो कि तुम्हें कहीं संतुष्ट होने नहीं देता। कितना ही बड़ा प्रेमपात्र मिल जाए, कितने ही प्रेमी मिल जाएं, तुम संतुष्ट कभी न हो सकोगे। यह सौभाग्य है। यही अतृप्ति तुम्हें परमात्मा की तरफ उन्मुख करेगी। अगर तुम कहीं संतुष्ट हो गये होते तब तो तुम क्षुद्र में उलझकर ही रह गये होते। फिर कौन पंख पसारता सत्य के आकाश में? फिर कौन उड़ता परमात्मा के शून्य गगन में? नहीं, इसको दुर्भाग्य मत कहो।

तुम मानसरोवर के हंस हो। उतर आए हो हिमालय से नीचे, कहीं गंदे तालाब के किनारे बैठे हो। तुम्हें वहां तृप्ति मिलती नहीं। कितना ही अच्छा तालाब हो, तुम कितना ही उसे सुंदर बनाने की कोशिश करो, मगर तालाब तो तालाब है, सड़ा-गला तालाब। मानसरोवर का हंस तृप्त नहीं होगा। उसे लगता है कि कुछ चूक रहा है। यह बात हर प्राण में समाई हुई है कि कुछ चूक रहा है, शायद स्पष्ट भी नहीं कि क्या चूक रहा है?

मानसरोवर के हंस को जब तक मानसरोवर ही न मिल जाए, उसे तृप्ति नहीं होगी, यह सौभाग्य की घटना है। अन्यथा पता नहीं कहाँ के ताल-तलैयों में बैठकर तुम तृप्त हो गये होते। तुम्हारे भीतर कुछ है जिसने मानसरोवर को जाना है। वह ताल-तलैयों से राजी नहीं होगा। जगत का कोई भी प्रेम तुम्हें तृप्ति नहीं दे पाएगा। यह सौभाग्य की बात है। देव कुमार, अपनी व्याख्या थोड़ी बदलो। दूलनदास पर ओशो की किताब 'प्रेमरंग रस ओढ़ चदरिया' में से एक उद्धरण आपको पढ़कर सुनाना चाहूंगा-

'परमात्मा को खोजे बिना तृप्ति नहीं हो सकेगी। उसकी जरूर खोज कर लेनी चाहिए। उसको पाया तो सब पाया। उसको खोया तो सब खोया। उसकी प्राप्ति में ही प्राप्ति है क्योंकि उसके पाते ही कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता। फिर सब पा लिया। उसके पाते ही शेष कुछ कैसे रह जाएगा? मालिक को ही पा लिया, तो उसकी मालकियत भी पा ली। सम्राट को पा लिया तो

उसका साम्राज्य भी मिल गया। और उसके बिना, तुम मांगते रहो, मांगते रहो, मांगते रहो... तुम भिखमंगे के भिखमंगे ही रहोगे। तुम्हारे हाथ का भिक्षापात्र न कभी भरा है और न कभी भरेगा। वह तो मालिक से ही भरना होगा। संत दूलनदास कहते हैं-

दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिए खोज
कोऊ सुनै राग अरू रागिनी, कोऊ सुने कथा पुरान
जन दूलन अब का सुनै, जिन सुनी मुरलिया तान

कहते हैं, 'मैंने तो सुन ली उसकी मुरली की तान। मैंने तो उसका अनाहत नाद सुन लिया। मैं तो रंग गया उसके आनंद में। मैं तुम्हें भी पुकारता हूं कि तुम भी अब जागो, घड़ी आ गई! प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया! अब तुम भी ओढ़ो प्रेम रंग में, प्रेम के रस में रंगी हुई चदरिया को! तुम भी रंगो अब प्रभु की प्रीति में भक्ति में, भाव में।'

दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिए खोज- ऐसे नाम की खोज करनी चाहिए। दूलनदास कहते हैं कि उसकी मुरलिया सुननी है, उसकी प्रीति में पड़ना है। तब भक्ति पैदा होगी। नाम रस में डूबो।'

प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया–शीर्षक पढ़कर तो यही अर्थ समझ में आता है कि ओशो सांसारिक प्रेम की बात कर रहे हैं। नहीं, ओशो अनाहत नाद के प्रेम में डूबने की बात कर रहे हैं। दूलनदास का यह अद्‌भुत वचन, 'सुनी मुरलिया तान' अब और क्या सुनने को बाकी रहा? उस प्यारे की बांसुरी की धुन सुन ली, उसके प्रेम में डूब गये। प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया।

प्रेम पाने की अभिलाषा तो सब में है। लेकिन यहाँ प्रेम की तृप्ति का कोई उपाय संसार में है नहीं। वह तो तभी तृप्त होगा जब परमात्मा मिल जाए। उसके पहले तृप्ति होनी भी नहीं चाहिए। दुर्भाग्य नहीं, यह सौभाग्य है। एक ओंकार सतनाम के प्रेम में डूबो ताकि किसी दिन तुम भी संत जगजीवन की तरह कह सको–'अरी मैं तो नाम के रंग छकी'।

प्रश्न–सदा से संतों ने कहा है कि यदि तुमने संसार की ओर मुंह किया तो परमात्मा के प्रति तुम्हारी पीठ हो जाएगी। हम संसार से विमुख होना

नहीं चाहते। प्रभु के सम्मुख होना चाहते हैं। कृपया हमें मार्गदर्शन दें।

तुम्हारे सारे महात्मा, परमात्मा के खिलाफ रहे हैं। परमात्मा ने संसार बनाया और महात्मा कहते हैं कि संसार से विमुख हो जाओ। नहीं! मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि 'होगा अपमान रचयिता का, रचना को अगर ठुकराओगे; संसार से भागे फिरते हो, भगवान को तुम क्या पाओगे?' संसार परमात्मा का प्रगट रूप है, परमात्मा संसार का अप्रगट रूप है। ये विपरीत बातें नहीं हैं। संसार से परमात्मा की ओर जाना है। प्रगट से अप्रगट की ओर। स्थूल से सूक्ष्म की ओर तुम्हारी यात्रा हो। फिर यह विरोध समाप्त हो जाएगा।

एक बार किसी ने ओशो से पूछा- 'आपने कहा है कि संसार में परमात्मा छिपा है।' ओशो ने कहा, 'नहीं! तुमने मुझे गलत सुना है। मैंने ऐसा कभी नहीं कहा कि संसार में परमात्मा छिपा है। मैंने कहा है कि संसार परमात्मा का प्रगट रूप है।' छिपने या नहीं छिपने का सवाल नहीं। तुम सम्यक् दृष्टि से देख पाओ तो जगत ही परमात्मा है, सृष्टि ही सृष्टा है। तुम्हारी आंखें साफ न हों तो तुम्हें संसार नजर आता है, माया नजर आती है। आंखों की धूल साफ करो। अगर तुम सपने भरी आंखों से, वासना भरी आंखों से देखोगे, कामना के चश्मे से, तो संसार नजर आएगा। तुम निर्वासना से देखोगे तो संसार ही परमात्मा नजर आएगा। दोनों में कोई विरोध नहीं है।

इसलिए मत पूछो कि कैसे संसार से विमुख हों, तो परमात्मा के सम्मुख हों। धर्म की पुरानी भाषा थी इस प्रकार की। ओशो के साथ इस प्रकार की भाषा उपुयक्त नहीं जंचती। ओशो तो ज़ोरबा-दि-बुद्धा के हिमायती हैं। अध्यात्मवाद और भौतिकवाद का समन्वय करते हैं ओशो। उनकी एक कृति का शीर्षक है-'रूट्स ऐंड विंग्ज़'-आओ, जड़ों को मजबूत करें, फूलों की पंखुड़ियां फैलाएं। जमीन और आकाश के निर्विरोध अस्तित्व को समझें, अद्वैत को देखें। संसार में ही परमात्मा को खोजें। वह तो मौजूद है ही। हम अपनी दृष्टि साफ करें।

प्रश्न—यहाँ समाधि कार्यक्रमों में भाग लेने के पश्चात् घर लौटने पर, पुनः संसार की आपाधापी एवं दौड़धूप में, घर-गृहस्थी में और

वासनाओं-महत्त्वाकांक्षाओं में, समय न गवांना पड़े, मैं 10-12 घंटे समाधि में डूब सकूं, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

नहीं! मोहन त्रिवेदी, यह आशीष नहीं, अभिशाप हो जाएगा। गौतम बुद्ध अपने आष्टांगिक मार्ग के अंतिम बिंदु में कहते हैं 'सम्यक् समाधि'। समाधि में भी 'सम्यक्' जोड़ देते हैं। डेढ़ से लेकर तीन घंटे तक समाधि में डूबना सम्यक् है। शेष समय संसार में जीयो वरना तुम संसार के खिलाफ हो जाओगे। तुम्हारे मन में द्वंद्व है–परमात्मा और संसार को तुम उलटा समझ रहे हो। कोई भी चीज छोड़नी नहीं है। संसार में जीयो, समाधि में डूबकर परमात्मा को भी जीयो।

संन्यास का अर्थ ऐसा समझना–सम्यक् विन्यास-राइट डिस्ट्रिब्यूशन। रोज तुम्हें 24 घंटे मिलते हैं, 8 घंटे सोने में चले जाते हैं, 8 घंटे आजीविका उपार्जन में, शेष बचे 8 घंटे–इसमें तुम दो हिस्से कर लो–4 घंटे अपने शरीर की देखभाल, स्नान, भोजन, पारिवारिक काम, सामाजिक औपचारिकताओं आदि में लगा दो। शेष बचे 4 घंटे तुम अपने लिए दे दो। इससे ज्यादा अगर तुम समाधि में डूबे तो वह सम्यक् नहीं होगा।

मैं सम्यक् समाधि के पक्ष में हूं। किसी भी अति पर मत जाओ। 'औषधि की अति हो जाए तो वह भी जहर हो जाएगी।' समाधि भी औषधि है। उसकी भी अति नहीं। अति सर्वत्र वर्जयेत। अति कहीं भी हो, व्याधि है।

आज इतना ही। धन्यवाद।

प्रेमं शरणं गच्छामि!

अध्याय सात

प्रेम में दर्द क्यों?

प्रश्नसार—

1. प्रेम में मीठा-मीठा दर्द क्यों होता है?
2. प्रेम का अंतिम रूप क्या है?
3. ओशो के अमृत वचनों में आपसी संबंध?
4. समझ के संग भोलेपन के सौंदर्य का राज?

प्रश्न—पिछले दो माह से मैं एक युवक के गहन प्रेम में हूं। प्रेम में मीठा-मीठा दर्द क्यों होता है?

हे देवी, अगर कड़वा होता तो तुम कब की भाग गई होती... सब छोड़-छाड़ कर! मछली को फंसाने के लिए आटा लगाते हैं कि नहीं? मछली पूछे कि कांटे में मीठा-मीठा, इतना स्वादिष्ट, लुभावना आटा क्यों लगा रहता है? ताकि तुम कांटे में उलझ जाओ। अतः थोड़ी सी मिठास जरूरी है। विवाह होने दो, फिर दो-चार माह बीतने दो! थोड़ा धैर्य रखो, जल्दी ही सारा रहस्य खुल जाएगा। मेरे समझाने से नहीं समझ आएगा।

प्यार की मन में जोत जलाए एक जमाना बीत गया
आंसू की परवान चढ़ाए एक जमाना बीत गया।
अब क्या हमको दौरे जमाना होश दिलाएगा साकी
शायद हमको होश में आए एक जमाना बीत गया।
अहदे बहारां जोशे जवानी कुंजे गुलिस्तां तन्हाई
चांदनी रातें और दो साए एक जमाना बीत गया।
आओ अदम फिर सुंदर सुंदर मूरतियों से प्यार करें
उजले उजले धोखे खाए एक जमाना बीत गया।
दिल को ढाढ़स देने वाले अब इतनी तकलीफ न कर
इस घर में कंदील जलाए एक जमाना बीत गया।

एक जमाना बीत जाएगा तब अक्ल आएगी, जल्दबाजी नहीं की जा सकती। थोड़ा धैर्य रखो, जल्दी ही सारा रहस्य खुल जाएगा। मेरे समझाने से नहीं समझ आएगा।

प्रश्न—भक्ति का, प्रेम का अंतिम रूप क्या है?

गौणी भक्ति से आरंभ करो, मध्य में आएगी पराभक्ति, और अंत में आएगी भगवत्ता। गौणी भक्ति, पराभक्ति और केवल भक्ति।

जिस प्रकार महावीर ने कहा, आत्मा के तीन रूप हैं-बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। महावीर का 'परम-आत्मा' ईश्वर का पर्यायवाची नहीं है। परमात्मा अर्थात् आत्मा का परम रूप, आत्मा की परम अवस्था। जब आत्मा बाहर की ओर जा रही है, वह बहिरात्मा। जब आत्मा प्रत्याहार करने लगी,

प्रतिक्रमण करने लगी, भीतर की ओर आने लगी, उसका नाम है अंतरात्मा। और जब न बाहर जाती, न ही भीतर आती, उसका नाम है परमात्मा। आवागमन से मुक्त आत्मा।

जैसे 'न ज्ञेय, न ज्ञाता, बल्कि ज्ञान। न दृश्य, न द्रष्टा, बल्कि दर्शन।' ठीक वैसे ही न प्रेमी, न प्रेमपात्र, बल्कि केवल प्रेम। बहिर्मुखी प्रेम से शुरुआत करो, अंतर्मुखी प्रेम बीच की बात है; वहाँ पर आओ। कम से कम वहाँ तक तो आओ, उसके बाद केवल प्रेम ही बच जाता है। न कोई लेने वाला, न कोई देने वाला। तो आक्रमण वाले प्रेम से ग्रहणशील प्रेम पर आओ, उसके बाद केवल प्रेम पर आओ।

ठीक इसी प्रकार मैं भक्ति का भी विभाजन करूंगा—गौणी भक्ति, पराभक्ति, केवल भक्ति। अंतत: केवल भगवत्ता ही शेष बचती है। न भक्त रहा, न भगवान। केवल भक्ति अथवा भगवत्ता ही पराकाष्ठा है। उसके पहले कहीं रुक मत जाना। गौणी भक्ति बहिर्गामी है। पराभक्ति अंतर्गामी है। केवल-भक्ति अनागामी है। वह आवागमन से मुक्ति है। किसी शायर ने कहा है-

आंख की आंख से जो बात हुआ करती है
इक कहानी की शुरुआत हुआ करती है।
कैसी मदहोशी है ये कैसा नशा है इसमें
जुल्फ की छांव से जो रात हुआ करती है।
दिल के तारों पे थिरकती है गज़ल की जो धुन
आप के होठों से बरसात हुआ करती है।
कौन सा राज़ नहीं आंखों में उतर आता है
आपसे यूं जो कभी बात हुआ करती है।
कितना पुरनूर हो उठता है सफर मंजिल का
यूं अचानक जो मुलाकात हुआ करती है।

बाहरी मुलाकात चाहे प्रेमी-प्रेमिका की हो, अथवा गुरु-शिष्य की हो, या भक्त-भगवान की हो; कितना ही पुरनूर हो जाए सफर मंजिल का, मगर स्मरण रखना—और आगे जाना है। मुलाकात द्वैत है। अद्वैत के पहले ठहर मत जाना। अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं।

प्रश्न—ओशो कहते हैं कि उत्सव मेरा धर्म है, प्रेम मेरा संदेश है, मौन मेरा सत्य है। इन तीन अमृत वचनों में आपस में क्या संबंध है?

बड़ा गहरा संबंध है। जब ओशो कहते हैं, 'मौन मेरा सत्य है' तो 'एक ओंकार सतनाम' की बात कर रहे हैं। जब तुम्हारा मन बिलकुल मौन हो जाए तो भीतर एक धुन गूंजती है वही परम सत्य है। हरि ओम् तत्सत्। जहाँ-जहाँ ओशो कहते हैं मौन में डूबो, मुनि यानी मौनी, वहाँ ओम् की तरफ इशारा है। जब तुम्हारा मन मौन होगा तब जो नाद गूंजता है अनाहत का, वह परम सत्य है। ओशो ने 'हरि ओम् तत्सत्' के पहले प्रवचन में तो यहाँ तक कहा है 'अगर एक शब्द को कम करना है तो 'हरि' को हटा दो।' ईश्वर की जरूरत नहीं। उसके

बिना भी काम चल जाएगा। 'ओम् तत्सत्'—ओम् ही परम सत्य है। इतना पर्याप्त है। तो जब कहते हैं मौन मेरा सत्य है—तो उनका इशारा ओम् की तरफ है। जब कहते हैं प्रेम मेरा संदेश है और उत्सव मेरा धर्म है तो इन्हें तीन तलों पर समझो : पहली केंद्र की बात। दूसरी परिधि की बात। और तीसरी दोनों के मध्य की बात।

केंद्र में है सत्य ओंकार का, प्रेम है मध्य में, और उत्सव है बाहर परिधि पर। इन तीनों का जोड़ ही धर्म का सार है। तुम भीतर डुबकी लागाओ ओंकार में। तुम्हारा अंतस सहज प्रेम से भर जाएगा। और बाहर जीवन का उत्सव घटित होगा। चंडीदास ने कहा है, 'उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र।'

उत्सव परिधि पर, केंद्र में आनंद घटता है ओंकार में डुबकी से। और इन दोनों के मध्य में जो घटना घटती है उसका नाम है प्रेम।

प्रश्न—आपकी धीर-गंभीर समझ और बचपन जैसे भोलेपन के सौंदर्य का राज क्या है?

स्वस्थ प्रेम। मैं अपने आप में स्थित हूं। किसी की चिंता नहीं है। कोई मुझे प्रेम दे, कि न दे। कोई आदर करे, कि अनादर करे। किसी की फिक्र नहीं है। इसलिए मैं जैसा हूं, वैसा ही प्रगट हो सकता हूं। अपने स्वभाव में जी सकता हूं।

गंभीरता शुरु होती है जब हम इस फिक्र में पड़ जाते हैं कि दूसरे मेरे बारे में क्या सोचेंगे? मैं अपनी एक इमेज खड़ी करना चाहता हूं। वह छवि बना पाऊंगा कि नहीं बना पाऊंगा, कोई मेरा मजाक तो नहीं उड़ाएगा? हंसी तो नहीं उड़ाएगा? फिर चिंता शुरु होती है और गंभीरता पकड़ लेती है।

जैसे ही हमारा प्रेम सक्रिय रूप लेता है, हम दूसरे से प्रेम मांगने लगते हैं। दूसरा व्यक्ति सशर्त प्रेम करेगा। उसका प्रेम तो कंडीशनल होगा। वह कहेगा तुम ऐसा-ऐसा व्यवहार करो तो ही मैं आदर दे सकूंगा। अगर उससे प्रेम और आदर चाहिए तो वैसा व्यवहार करना पड़ेगा। फिर हम अपने स्वभाव में न जी सकेंगे। स्वभाव की कीमत चुकाकर प्रेम पाना मंहगा सौदा है।

मैंने कभी इस बात की चिंता नहीं की, कोई मेरा आदर करे, कि अनादर करे। मैं अपनी मस्ती में, अपनी मौज में जी रहा हूं। इसलिए अपने बचपन को जी पा रहा हूं।

जैसे कोयले की काली कोठरी में से कोई निकले, फिर भी उसके वस्त्र उज्ज्वल के उज्ज्वल रहे। जो अपने बचपन को, सरलता को, निर्दोषता को बचा ले; वो सचमुच में बच गया। वरना संसार की वासनाओं में, कामनाओं की कीचड़ में लथपथ हो जाते हैं लोग। बुरी तरह उलझ जाते हैं।

दूसरों पर नजर नहीं रखो तो तुम भी अपने बालपन को फिर से जीना आरंभ कर सकोगे। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है, तड़प रहा है प्रगट होने को। तुमने बाहर कड़ी कवच ओढ़ ली है शिक्षा-सभ्यता-संस्कृति के नाम पर, गंभीर प्रौढ़ता की। समाज और दूसरे लोग तुम्हें संचालित करते हैं। और याद रखना दूसरे बहुत सारे

हैं। तुम कभी सब को तृप्त न कर सकोगे। लोगों की तुमसे अलग-अलग अपेक्षाएं हैं जो आपस में विपरीत भी हैं। तुम किस-किस को तृप्त करोगे? कैसे तृप्त करोगे? तुम्हारे भीतर अनेक खंड-खंड हो जाएंगे।

एक व्यक्ति तुमसे कुछ चाहता है, दूसरा व्यक्ति तुमसे कुछ और उम्मीद बांधे है, तीसरे के एक्सपेक्टेशन्स बिलकुल ही भिन्न हैं। इन सबको एक साथ तुम कैसे खुश करोगे? असंभव काम करने चले तो तुम्हारे भीतर खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे। तुम बंट जाओगे, पाखंडी हो जाओगे, एक व्यक्ति को एक चेहरा दिखाओगे, दूसरे को कुछ और। खंडित व्यक्ति पाखंडी हो जाता है।

मैंने सुना है नसरुद्दीन अपनी पत्नी के साथ बाजार जा रहा था। सामने से एक बहुत सुंदर युवती आई और उसकी तरफ देखकर मुस्कुराई। पत्नी ने नसरुद्दीन का हाथ पकड़कर हिलाया, पूछा, 'कौन है यह चुड़ैल? तुम्हें देखकर क्यों मुस्कुरा रही है?' नसरुद्दीन ने कहा–'तुम मेरी चिंता और मुश्किल समझो। व्यंग्यात्मक मुस्कान के द्वारा इशारों में वह मुझसे पूछ रही थी, 'यह कौन चुड़ैल तुम्हारे साथ जा रही है?' उसे तुम्हारे बारे में कुछ नहीं पता। मुझे वह कुंआरा ही समझती है अभी तक।'

अगर तुम बहुतों का प्रेम चाहोगे कि बहुत लोग तुम्हें प्रेम करें तो टुकड़े-टुकड़े हो जाओगे। बड़ी मुसीबत में फंस जाओगे। क्योंकि जितने लोग तुम्हें प्रेम करेंगे तुम्हारे उतने ही टुकड़े हो जाएंगे। तुम अखंड न हो पाओगे। तुम्हें बहुत पाखंडी होना पड़ेगा। ये अखंड और पाखंड शब्द बड़े अद्‌भुत हैं। एक दूसरे के विपरीत हैं। पाखंडी कभी अखंड नहीं हो सकता। भीतर कुछ है, दिखाता कुछ और है। अलग-अलग लोगों को अलग-अलग चेहरे दिखाता है। बॉस के सामने एक चेहरा, दुम हिलाता हुआ, और अपने मातहतों के सामने दहाड़ते शेर की तरह दूसरा चेहरा। पत्नी के सामने चूहा हो जाता है। नौकर के सामने कुत्ता सा गुर्राने लगता है। बच्चों के सामने गंभीर भालू। स्नानगृह में आईने के सामने बंदरों जैसा चंचल हो जाता है।

जितने लोगों से तुम संबंधित होओगे, तुम्हारे उतने चेहरे हो जाएंगे। कम से कम 20-25 लोगों से तो हर व्यक्ति निकटता से जुड़ा होता है। उतने मुखौटे

तुम्हें ओढ़ने पड़ेंगे। तुम्हारी स्वाभाविकता, सरलता, निर्दोषता, अखंडता नष्ट हो जाएगी। तुम प्रामाणिक न रह सकोगे। लोगों को खुश करने की कोशिश की, तो तुम ईमानदार नहीं हो सकते। और पाखंडी होकर किसी को भी खुश न कर पाओगे। बड़े मजे की बात है... तुम केवल भ्रम में हो कि लोग तुमसे खुश हैं, कोई खुश नहीं है। न मुल्ला की पत्नी खुश है; और न जो सुंदरी देखकर मुस्कुराई, वह खुश है। और नसरुद्दीन बेचारा बड़ी मुसीबत में है। वह सोच रहा था कि दोनों को खुश कर देगा। इसको कुछ कहा, उसको कुछ कहा, किसी और को कुछ अलग ही कहा, विभक्त हो गया। बहुतों से प्रेम विभक्त करेगा। यदि शांति पानी है तो विभक्त की जगह तुम बन जाओ भक्त। एक परमात्मा से प्रेम तुम्हें भक्त बना देगा।

झूठ का फैलाव, प्रपंच खूब फैल जाता है। बड़ी उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे ही तुम सक्रिय प्रेम में उलझे, तुम दूसरों के गुलाम हो गये। फिर दूसरे तुम्हें अपने इशारों पर संचालित करेंगे। तुम्हारी मजबूरी है; तुम्हें उनके इशारों पर नाचना होगा अन्यथा वे तुरंत अपना प्रेम वापस खींच लेंगे। अपनी स्वाभाविकता में केवल वही व्यक्ति जी सकता है जो दूसरों पर निर्भर नहीं है। जो अपनी सहजता में प्रसन्न है। कोई प्रेम करे अथवा कोई भी न करे।

अभी कुछ दिनों पहले मैं यमुनानगर में था, कुछ पत्रकार मिलने आए। उन्होंने पूछा कि कल हमने आपके बारे में इतनी बड़ी न्यूज छापी थी, आपने पढ़ी? मैंने कहा, माफ करना मैंने पिछले 20 साल से कोई अखबार नहीं पढ़ा। उन्होंने कहा कि 20 साल से अखबार नहीं पढ़ा? अपने बारे में भी न्यूज नहीं पढ़ी? मैंने कहा, मुझे फिकर ही नहीं तुम क्या छापते हो? जो छापना है छाप दो। वे कहने लगे, फिर आप प्रेस कॉन्फ्रेंस लेते किसलिए हैं? मैंने कहा, मुझे बोलने में मजा आता है। मुझे जो बोलना है, मैंने बोल दिया। तुम्हारी मौज तुम्हें जो छापना हो, छापो। मैं न टी.वी. देखता हूं न ही अखबार पढ़ता हूं। वे पूछने लगे कि आपको भारत के राष्ट्रपति का नाम पता है कि नहीं? मैंने कहा, 'मुझे नहीं पता। न ही पता लगाने की कोई आवश्यकता है। अरे, राष्ट्रपति को भी मेरा नाम नहीं पता है। लेन-देन बराबर हो गया। मुझे उनका नाम पता लगाने की कौन सी जरूरत है? और आए

दिन तो राष्ट्रपति बदलते रहते हैं। किस-किस का नाम याद रखो! हमें तो उसका नाम याद हो गया है जो कभी नहीं बदलता। एक ओंकार सतनाम। सनातन परमात्मा के नाम का सुमिरन हो गया है।'

अगर तुम दूसरों से प्रेम पाना चाहोगे तो तुम्हें उनके अनुसार चलना होगा। और दूसरे लोग बहुत सारे हैं। कोई एक होता तो भी ठीक कि चलो इकलौती जोरू के गुलाम हो गए, बस! मगर तुम्हारी दुर्गति ऐसी है जैसा मैंने सुना है कि नसरुद्दीन चोरी करने किसी के घर में घुसा, रात दो बजे अंधेरे में। चोरी तो नहीं कर पाया, सुबह मकान मालिक ने उसको पकड़ लिया। कोर्ट में न्यायाधीश ने पूछा, 'हद हो गई, तुम आधी रात चोरी करने घुसे थे, सुबह तक करते क्या रहे? कुछ भी न चुरा पाए? चोरी तो खैर तुमने नहीं की, मकान मालिक खुद ही कह रहा है कि कोई भी सामान नहीं गुम हुआ है। लेकिन सात बजे तक कर क्या रहे थे?' नसरुद्दीन ने कहा, 'क्या बताएं हुजूर। ऐसी अद्‌भुत घटना घट रही थी....मकान मालिक की दो बीवियां हैं। एक नीचे की मंजिल पर रहती है, दूसरी ऊपर की मंजिल पर रहती है। बड़ी खींचातानी चल रही थी। नीचे वाली, छोटी बीवी अपनी तरफ खींच रही थी, बड़ी बीवी उसे ऊपर खींच रही थी। बेचारे पति की कैसी दुर्गती हो रही थी! उसे देखने में मुझे मजा आने लगा, सो मैं भूल ही गया चोरी-वोरी करना। ऐसी कुटाई-पिटाई उसकी हो रही थी, कोई उसको इस तरफ खींच रहा, कोई उस तरफ! कहीं उसका कुर्ता फट गया, कहीं धोती निकल गई। बड़ी फजीहत... ऐसा रस मुझे आया कि मैं भूल ही गया चोरी इत्यादि। सुबह हो गई। सूर्योदय हो गया और लोगों ने मुझे पकड़ लिया। न्यायाधीश ने कहा–'देखो नसरुद्दीन, माना कि तुमने चोरी नहीं की, लेकिन चोरी करने के इरादे से तो तुम घुसे थे'। नसरुद्दीन ने कहा–'हाँ, वह तो मैं स्वीकारता हूं। मैं चोरी करने की नीयत से ही गया था'। न्यायाधीश ने कहा, 'कुछ तो सजा देनी होगी। तुम्हीं बताओ क्या सजा दूं। कुछ न कुछ तो सजा देनी होगी। तुम्हारा इरादा तो ठीक नहीं था'। नसरुद्दीन ने कहा, 'हुजूर, चाहे जो सजा दे देना, बस एक सजा भर मत देना। एक ही मेरी गुजारिश है। यह मत कहना कि दो स्त्रियों से शादी करो।

सिर्फ यह सजा मत देना। फांसी पर चढ़ाना हो, मजे से चढ़ा दो। कल रात जो दृश्य मैंने देखा है उससे तो सूली पर लटक जाना ज्यादा आसान है। आजीवन कारावास देना हो तो वह भी मंजूर है। बस यह भर मत कहना कि दो-दो औरतों से शादी करो'।

एक और लतीफा-

सेठ चंदूलाल के पांच वर्षीय बेटे भोंदूलाल ने पूछा-'पिताजी, सरकार ने ऐसा कानून क्यों बनाया है कि कोई व्यक्ति एक से अधिक विवाह नहीं कर सकता?'

चंदूलाल ने कहा-'बेटा, जो लोग स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते, उनकी हिफाजत करना कानून और सरकार का कर्तव्य है।'

हमारा मन बहुत लोगों को खुश करना चाहता है। और उस उलझन में हम अपनी स्वाभाविकता, अपनी प्रामाणिकता, अपनी अखंडता खो देते हैं।

अगर तुम अपने भीतर के बचपन को बचाना चाहते हो तो इस बात पर गौर करना कि तुम्हारा प्रेम स्व-केंद्रित प्रेम हो। तुम अपने आप को प्रेम करो, आप्तकाम बनो। और उससे आगे एक और कदम उठाना। तीन शब्द मैंने तुमसे कहे वे याद रखना-एक बहिर्मुखी प्रेम, दूसरा अंतर्मुखी प्रेम और इन दोनों के पार, त्रिकोण का तीसरा बिन्दु अनागामी प्रेम। न कहीं आता न कहीं जाता। स्वयं में स्थित। उस प्रेम को जिसने जाना केवल वही व्यक्ति गैर-गंभीर हो सकता है क्योंकि वह स्वाभाविक-सहज हो सकता है। वह अपने बचपन के भोलेपन को, सौंदर्य को जी सकता है।

एक घटना याद आई। मैं कुछ साल तक ऑर्केस्ट्रा कंडक्ट करता था। अच्छे-अच्छे कलाकार जो रिहर्सल के दौरान खूब अच्छा गाते थे, जब वे मंच पर खड़े होकर माइक पकड़ते तो उनके पैर कांपने लगते, आवाज लड़खड़ा जाती, गला रूंध जाता।

मैं इस पर सोचता था कि क्या हो जाता है इन लोगों को? अच्छा-भला गाते हैं। जहाँ उन्होंने देखा कि ऑर्केस्ट्रा सुनने 5000 लोगों की भीड़ बैठी है, उनके हाथ-पैर कांप जाते। इतनी घबराहट क्यों? यह नर्वसनेस कहाँ से आई? क्योंकि यह बात मन में आ गई-'ये लोग क्या सोचेंगे? मैं गा पाऊंगा अच्छे से कि नहीं?

तालियां बजेंगी कि हूटिंग होगी?' और ऐसा विचार आते ही कलाकार घबरा जाता है, उसके हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, ब्लड प्रेशर ऊंचा हो जाता है, वह पसीना-पसीना हो जाता है।

अगर तुमने दूसरों से प्रेम पाने की कोशिश की, तुमने चाहा कि तुम्हें प्रशंसा मिले, फिर बहुत फजीहत होगी। फिर तुम्हारे हाथ-पैर कांपेंगे, फिर तुम्हारा ब्लड प्रेशर बढ़ेगा। फिर लोग तुम्हारा पसीना छुड़वा कर ही रहेंगे। वे कोई सस्ते में तारीफ नहीं करते हैं। पसीना तो निकलवा ही देंगे। मैं उनसे कहता, तुम अपने आप में स्थित होना सीखो। सामने चाहे हजार लोग बैठे हों या तुम स्नानगृह में अकेले हो, इससे क्या लेना देना? तुम जैसा गीत गाते हो वैसा ही गाओ। किसी को अच्छा लगेगा, बजाएंगे ताली। किसी को सड़े अंडे फेंकने का दिल करेगा, तो फेंकेंगे। उससे तुम्हारा क्या बिगड़ता है? तुम क्यों चाहते हो कि तुम्हारी इमेज अच्छी बने? जहाँ तुम इमेज बनाने के चक्कर में पड़े, सक्रिय प्रेम की उलझन खड़ी हुई, वहाँ से दुख और गंभीरता की शुरुआत हुई।

अपने बचपन के भोलेपन को बचाना। और उसका सूत्र है—बहिर्गामी प्रेम से अंतर्गामी प्रेम, और अंतर्गामी प्रेम से अनागामी प्रेम की ओर यात्रा।

आज के सत्र को यहीं समाप्त करते हैं।

बहुत-बहुत धन्यवाद और शुभ रात्रि।

प्रेमं शरणं गच्छामि!

अध्याय आठ

होश और प्रेम के दो पंख

प्रश्नसार—

1. भक्ति साधना में कौन-कौन सी बाधाएं आती हैं ?2. ध्यान-भक्ति से समाधि तक यात्रा कैसे होगी?

मेरे प्रिय आत्मन्

शिविर के इस प्रश्नोत्तर सत्र में आप सब का हृदय से स्वागत करता हूँ। ओशो की मधुशाला में आ गए हो तो अब होश और प्रेम की हाला छककर पीना। बिन पिए मत लौट जाना। घटा छाई है, साधना का सुहाना मौसम आया है, अब एक भी क्षण गंवाना नहीं है। घूंट दो घूंट से काम न चलेगा, अब तो पूरी समाधि-सुराही ही गटक जाना। कबीर साहब ने कहा है—सुरति कलाली भई मतवारी, मधवा पी गई बिन तौले।

वाइज़े मोहतरम इस तरह आपका वादा खाने में आना बुरी बात है।
आ गए हैं तो फिर थोड़ी पी लीजिए बिन पिए लौट जाना बुरी बात है।

तेरा कहना सर-आँखों पे ए नासेहा उनका पीना पिलाना बुरी बात है।
पर करे रिंद क्या, छाई हो जब घटा फिर न बोतल उठाना बुरी बात है।

आएगा हस्र जब, देखा जाएगा तब क्यों अभी से डरें शेख जी बेसबब।
हैं बड़े कीमती उम्र के चार दिन इनको यूं ही गंवाना बुरी बात है।

घूंट दो घूंट पीकर मचल जाए जो बादानोशीं की हद से निकल जाए जो।
ऐसे कमजर्क मैकश को ऐ मैकशो साथ अपने बिठाना बुरी बात है।

कुछ सवाल मेरे पास आए हैं, उनकी चर्चा से ध्यान व प्रेम का यह अटपटा रास्ता स्पष्ट हो जाएगा।

प्रश्न—भक्ति साधना में कौन-कौन सी बाधाएं आती हैं? एवं उनसे मुक्ति के उपाय क्या हैं?

ओशो ने अपने प्रवचन में एक छोटी सी बोध कथा कही है, उससे मैं अपनी बात शुरु करना चाहूँगा। कुछ लोग रात देर तक एक शराबखाने में शराब पीते रहे, गपशप करते रहे। आधी रात जब वे शराबखाने से बाहर निकले तो एक मित्र ने कहा कि सुन्दर पूर्णिमा की चाँदनी रात है, क्यों न हम नदी के किनारे चलें और नौका विहार करें। शराब के नशे में धुत्त उन चार-पाँच लोगों की मंडली पहुँची नदी के किनारे। नाव बंधी हुई थी किनारे खूंटी से। वे सब नाव में सवार हो गये, उन्होंने पतवारें उठा लीं। गीत गाते हुए, नशे में चूर उन्होंने पतवारें खेना शुरु कर दिया। चाँदनी रात, नशा, खुमारी, गायन-वादन, मस्ती में डोलते हुए पतवारों का चलाना।

दो तीन घंटे बाद जब भोर का हल्का-हल्का प्रकाश होने लगा, पक्षियों की आवाज़ होने लगी, तब एक मित्र ने कहा हम लोग बहुत देर से नाव चला रहे हैं; बहुत दूर आ गये होंगे, वापस भी लौटना है। तो किनारे लगा के देखें तो सही कौन सा गाँव है, हम किस जगह पहुँच गये। एक मित्र नीचे उतरा और नीचे उतरकर खिलखिलाकर हँसने लगा। उसके साथियों ने पूछा, 'तुम हँसते क्यों हो?' उसने कहा कि तुम भी नीचे उतरो और देखो और तुम भी हँसो। वे सब नीचे उतरे और खूब हँसे। कारण....रात को शराब के नशे में वे नाव की रस्सी खोलना भूल ही गये थे। उन्होंने बहुत पतवारें चलाईं, बड़ी मेहनत की; लेकिन पहुँचे कहीं भी नहीं।

करीब-करीब यही स्थिति अधिकांश आध्यात्मिक साधकों की होती है। वे सोचते हैं ध्यान और प्रेम की पतवार चला रहे हैं, समाधि की यात्रा कर रहे हैं। हमारी साधना की नाव परमात्मा की मंजिल की तरफ बढ़ रही है और अंत में पाते हैं कि कहीं जाना नहीं हुआ क्योंकि हम खूंटियाँ खोलना भूल गये थे। कौन सी वे खूंटियाँ हैं जिनसे हम बंधे हैं, इसकी स्पष्ट समझ हो तो ही ध्यान की, समाधि की, अध्यात्म की यात्रा हो पाती है। अकेली मेहनत काम नहीं आएगी। मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि उन्होंने पतवार चलाने में कोई कसर रख छोड़ी थी, लेकिन फिर भी कहीं पहुँचना न हो पाया।

तो प्यारे मित्रों, साधना में आने वाली बाधाएं कहीं बाहर से नहीं आतीं। वे हमारे भीतर मौजूद हैं। वो बाधाएं, वो रुकावट डालने वाली खूंटियाँ उखाड़ने की कोशिश करनी होगी। कौन-कौन सी खूंटियां हैं? सबसे पहली खूंटी है द्वंद्व की खूंटी—सुख और दुख में, सफलता और असफलता में, प्रेम और घृणा में, गरीबी और अमीरी में, स्वास्थ्य और बीमारी में, जन्म और मृत्यु में जो द्वंद्व हम देखते हैं, वह हमें बड़ा उत्तेजित करता है। यह द्वंद्व एक खूंटी है, हमारी जीवन नौका इससे बंधी हुई है। कोई चीज़ हमें सुखद रूप से उत्तेजित करती है, कोई चीज़ हमें दुखद रूप से उत्तेजित करती है। कोई चीज़ हमें सुखी करती है वो भी हमें बांध लेती है और कोई चीज़ हमें दुखी करती है वो भी हमें बांध लेती है। कोई हमें प्रेम करता है वो भी हमारे लिये फांसी बन जाता है, कोई हमें घृणा करता है वो भी हमारे लिये फांसी बन जाता है। हम बाहर से घटनाओं से बंध जाते हैं और उससे मुक्ति होगी निर्द्वंद्वता के द्वारा, समता भाव के द्वारा। जब हम इनको बराबर देखने लगें-सफलता असफलता

को, हार जीत को, तब हम इससे मुक्त होते हैं।

दूसरी खूंटी है बैर भाव की। और दुश्मनी दो प्रकार की है। एक तो बाहर के जगत से, लोगों से और एक अपने ही भीतर हम खुद से भी लड़ रहे हैं। कोई कह रहा है कि मैं क्रोध को मिटा के रहूँगा, कोई कह रहा है कि मैं मोह को नष्ट कर के रहूँगा, त्यागी बनूँगा; अपने भीतर अंतर्द्वंद्व उसने खड़े कर लिये हैं; तो कुछ बाहर क्रोधित हैं दूसरो पर और कुछ अपने आप पर क्रोधित हैं। ये क्रोध की खूंटी, बैर की खूंटी से बंधे हुए हैं। ये अपने भीतर यात्रा नहीं कर सकते चाहे ये कुछ भी करे। चाहे ये कितनी ही पतवार चलाए कुछ होने वाला नहीं। इससे मुक्ति मिलेगी निर्वैरता के द्वारा, मैत्रीभाव के द्वारा।

तीसरी खूंटी है कामना की खूंटी। याद रखना कर्म खूंटी नहीं है। यदि कामना प्रेरित कर्म है तो हम बंधे हैं, कर्मबंध निर्मित को रहा है। निष्काम कर्म, अकर्ताभाव से किये गये कर्म, आनन्दभाव से किये गये कर्म बांधते नहीं, हम मुक्त हो जाते हैं। अब फल के प्रति हमारी आसक्ति न रही, हमारी कोई कामना नहीं। कर्म अपने आप हो रहा है जैसे श्वास चल रही है, जैसे हृदय धड़क रहा है, हम करने वाले नहीं हैं-इसी भाव से जीवन के सारे कर्म होने लगें। पेड़ बड़ा हो रहा है, हवाएं चल रही हैं, नदी बह रही है। हवा को अहंकार नहीं है कि मैं बह रही हूँ, नदी को अहंकार नहीं है कि मैं यात्रा कर रही हूँ, वृक्ष को पता नहीं है कि मैं विकसित हो रहा हूँ। जब तुम्हारे जीवन के सारे कर्म ऐसे हो जाएं—अकर्म की दशा अर्थात् कामना रहित कर्म, कर्ताभाव रहित कर्म-तब एक और खूंटी हमने उखाड़ ली, हमारी नाव और मुक्त हुई।

चौथी है शिकायत भाव की खूंटी। जहाँ-जहाँ हमारी शिकायत है, चाहे वह किसी व्यक्ति से हो, चाहे समष्टि से हो, चाहे मनःस्थिति से हो, चाहे किसी परिस्थिति से हो—सब शिकायतें अंततः परमात्मा से ही शिकायत है। जब तुम कह रहे हो मेरा बेटा आज्ञाकारी नहीं है, इसकी वजह से मैं दुखी हूँ, वास्तव में परमात्मा को ही गाली दे रहे हो कि तुमने ऐसी औलाद क्यों पैदा की। किसी भी चीज़ के प्रति शिकायत परमात्मा से ही शिकायत है, तुम परमात्मा से नाराज हो। शिकायत भी नाराजगी का एक रूप है—हे प्रभु, ऐसा क्यों? मन्दिर, मस्जिद, चर्चों में जा के लोगों की प्रार्थनाएं तो सुनो। बड़े मीठे-मीठे शब्द, अच्छी-अच्छी स्तुति की बातें

कर रहे हैं लेकिन अगर उसका सार संक्षेप निकालो तो वह क्या है? वह यह है कि हे नासमझ परमात्मा, तूने ये कैसी दुनिया बनाई? अरे मुझसे सलाह ले, मैं बुद्धिमान, मैं तुझे बताता हूँ कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये।

तुम सुन लेना भक्तों की प्रार्थनाएं, ये अपने आपको भक्त समझ रहे हैं; जरा भी भक्त नहीं हैं, ये महाशिकायती हैं, ये हर चीज़ से नाराज़ हैं। इनकी मर्जी के अनुसार चीज़ें नहीं हुई हैं। मेरे पास लोग आते हैं; वो कहते हैं हम परमात्मा की खोज में हैं। मैं कहता हूँ नहीं मिलेगा। वो पूछते हैं क्यों? मैं कहता हूँ वो तुमसे बच के भाग रहा है, उसे पता है तुम शिकायती आदमी हो। तुम मिल जाओगे तो तुम उसकी गर्दन पकड़ लोगे कि तुमने ऐसी दुनिया क्यों बनाई? लोग गाते हैं–

दुनिया बनाने वाले, क्या तेरे मन में समाई
काहे को दुनिया बनाई?

इसलिए वो नहीं मिलेगा तुम्हें। शिकायत भाव की खूंटी से हम बंधे हैं। उपाय क्या है? अहोभाव। समझो कि हम जितने धन्यवाद भाव से भरते जाएंगे, हम शिकायत की खूंटी से मुक्त होते जाएंगे। न दूसरों से शिकायत, न अपने से शिकायत। कुछ लोग हैं जिन्होंने दूसरों से शिकायत तो छोड़ दी, अब खुद के पीछे पड़ गये कि मैं अपने आप को बदल के रहूँगा, मैं ऐसा हो के दिखाउँगा। अपने पीछे पड़े हैं, उनको स्वयं का होना बिल्कुल पसंद नहीं। आत्मग्लानि से भरे, घृणा से भरे कि मैं पापी, मैं पतित–वो अपने आप को बदलने में लगे हुए हैं। वही की वही दुष्टता जो दूसरों पर कर रहे थे, अपने साथ शुरु कर दी इन्होंने। इनको हम कहते हैं महात्मा। ये महामा वहात्मा कुछ नहीं, ये तो क्षुद्रात्मा हैं। पहले दूसरों को सता रहे थे अब खुद को सताने लगे।

अहोभाव दूसरों के प्रति और स्वयं के प्रति भी धन्यवाद का भाव रखना। न किसी ग्लानि में जाने की जरूरत, न तुम पापी हो, न तुम अपराधी हो। अपने से भी कोई शिकायत न करो। किसी ने कहा है–'मन मेरो बड़ो हरामी' अपने आप को गाली दे रहे हैं। प्रार्थनाओं में बस दो ही चीज़ें सुनने को मिलेंगी–ईश्वर की स्तुति कर रहे हैं और स्वयं को गाली दे रहे हैं। ये कोई प्रार्थना नहीं है। असली प्रार्थना तो होगी अहोभाव-कि प्रभु अदभुत् है ये तेरा प्यारा जगत। इसमें मैं भी हूँ और अकारण हूँ; मेरा कोई हक नहीं, मेरा कोई अधिकार नहीं, बस तेरी कृपा, तेरा लाख-लाख

शुक्रिया। और तब हम शिकायत की खूंटी से मुक्त होते हैं।

फिर पांचवीं खूंटी दुश्शील की खूंटी है। यदि हम दुश्शील होते हैं तो हम बंधे हैं और अगर हम शीलपूर्वक जीते हैं तब हम मुक्त होते हैं। इसे ऐसा समझना जगत में हम अकेले तो नहीं हैं, और भी लोग हैं। और जहाँ लोग हैं वहाँ कोई न कोई अनुशासन, नियम तो होगा। यदि आप जंगल में चल रहे होते, तो ठीक। आपकी मौज कि दायें चलो, कि बायें चलो, कि बीच में चलो, जो करना हो करो। आप अकेले ही हो जंगल में। लेकिन हाइवे पर गाड़ी ड्राइव कर रहे हो तो एक नियम का तो पालन करना ही पड़ेगा। ठीक है भारत में बाएं तरफ चलते हैं, अमेरिका में दायें तरफ चलने का नियम है। एक बात पक्की है कि एक ही तरफ चलना होगा तो ही ट्रैफिक चल पाएगा। यदि सभी अपनी मर्जी से चलने लगें तो कोई भी नहीं चल पाएगा। कोई कहीं भी नहीं पहुँच पाएगा। बड़ी दुर्घटनाएं होंगी, सब एक दूसरे से टकराएंगे। हम एक समाज के हिस्से हैं तो निश्चित रूप से हमें एक अनुशासन, नियम, शील और चरित्र के अनुसार चलना होगा वरना हमारी हरेक से मुठभेड़ होगी और इस मुठभेड़ में हम बुरी तरह परास्त होंगे क्योंकि भीड़ बहुत बड़ी है। जहाँ तक आपका निजी जीवन है, आप अपनी मौज से जीना, लेकिन जहाँ सामाजिक जीवन का सवाल है वहाँ नियम से ही चलना होगा। तो जो भी सामाजिक नियम हैं, साधक चुपचाप उनको मान लेता है। और इस प्रकार समाज से मुक्त हो जाता है।

मुझे याद आता है ओशो से किसी ने पूछा एक बार कि आप तो हमें क्रान्ति की बातें बतलाते हैं। क्या आप की तरह हम भी जिएं? ओशो ने कहा–कतई नहीं! तुम साधक हो मैं सिद्ध हूँ। तुम्हारी अवस्था अलग है मेरी अवस्था अलग है। मैं क्रान्तिकारी ढंग से जी सकता हूं। मैंने वह पा लिया जो पाने जैसा था; अब कोई मेरा मर्डर भी कर दे तो मेरा कुछ बिगड़ने को नहीं, मैंने परम संपदा पा ली। जो भी जीवन दे सकता था वो सब मुझे मिल गया। परम सौभाग्य घटित हुआ है, अब मुझसे कुछ छीना नहीं जा सकता। मैं क्रान्ति की बात कह सकता हूँ, मुझे कोई डर नहीं है। मुझे भविष्य नहीं चाहिये। मेरी कोई कामना नहीं, मेरी कोई आकांक्षा नहीं, मैं परिपूर्ण रूप से तृप्त हूँ। तुम अभी साधक हो, तुम्हें अभी आगे कुछ पाना है, तुम्हें कहीं पहुँचना है। यदि तुम क्रान्ति में उलझ गये तो याद रखना तुम अपनी शांति न

पा पाओगे। तुम्हें तो समाज के नियम मान के चलने होंगे। तुम समाज से लड़ाई में मत पड़ना। तो समाज का शील और सदाचार का जो भी नियम है, चुपचाप स्वीकार कर लेना। समाज से टक्कर मत लेना। समाज बहुत बड़ा है, तुम बहुत छोटे हो; समाज तुम्हें कुचल देगा। सड़क पर अगर तुम तय कर लो कि उल्टी तरफ ड्राइव करेंगे तो एक बात पक्की है कि तुम घर नहीं पहुँचने वाले, फिर तो अस्पताल या श्मशान घाट पहुँचोगे। पूरी भीड़ दायीं तरफ चल रही है तुम बायीं तरफ नहीं चल सकते। तो छोटी-छोटी बातों में समाज से मत उलझना। जो भी देश काल के अनुरूप नियम प्रचलित हों, उनसे ज्यादा उलझने की जरूरत नहीं। हम साधक हैं, हमें अपनी जीवन ऊर्जा को बचाना है, किसी और दिशा में लगाना है। इसको मैं कह रहा हूँ खूंटी, अगर हम उलझे तो हम बंध गये खूंटी से। जिंदगी भर फिर लड़ते रहो समाज से। फिर तुम विद्रोही और क्रान्तिकारी बन जाओगे, अपने जीवन की शान्ति न पा सकोगे, तुम समाधि न पा सकोगे। जिससे तुम लड़ोगे उससे तुम बंध जाओगे। फिर वे लोग तुम्हें परेशान करेंगे। तो तुम अपनी मुसीबत खुद खड़ी कर रहे हो। फिर तुम्हें बहिर्मुखी रहना पड़ेगा, तुम अंतर्मुखी नहीं हो सकते।

छठवीं खूंटी है गलत श्रद्धा। अतीतोन्मुख और विकास विरोधी हमारी श्रद्धाएं

और मान्यताएं भी एक खूंटी हैं। तो सम्यक् श्रद्धा, सही श्रद्धा–जो हमारे विकास का द्वार खोले–ऐसी हमारी श्रद्धा होनी चाहिये। यहाँ श्रद्धा से तात्पर्य किसी और पर श्रद्धा नहीं है क्योंकि श्रद्धा तो हमारा गुणधर्म ही है। श्रद्धालु तो प्रत्येक व्यक्ति है ही, लेकिन हमारी श्रद्धा गलत पर है। गलत श्रद्धा खूंटी है। सही पर श्रद्धा हो–सत्यम् शिवम् सुन्दरम् पर हमारा भरोसा हो, विकास की ओर, बेहतर की ओर जिंदगी बढ़ सके, ऐसी हमारी श्रद्धा हो, तब हमारी खूंटी खुल गई। अब हमारी नाव आगे बढ़ सकेगी।

और अन्तिम सूत्र है बंधन मुक्ति का–समर्पण। अहंकार हमारी खूंटी है जिससे हम बंधे हैं। आध्यात्मिक व्यक्ति को भी एक सूक्ष्म अहंकार पकड़ लेता है कि मैं कोई साधारण जन नहीं, मैं तो धार्मिक व्यक्ति हूँ, मैं तो प्रभु का खोजी हूँ। अब इसको भी समर्पित कर दें। सब कुछ स्वीकार, कुछ भी अस्वीकार न करें।

तो ये हैं खूंटियां जिनसे हम बंधे हैं। चित्त के अटकावों का सार निचोड़ आपसे कहा ताकि एक बार आपको सब साफ हो जाये और कहीं कोई खूंटी आपकी बंधी हो तो उखाड़ लेना क्योंकि अब आगे सूक्ष्म यात्रा पर जाएंगे, वहाँ ये खूंटियाँ नहीं चलेंगी। इनसे मुक्त हो जाना ज़रूरी है।

प्रश्न–ध्यान एवं भक्ति से समाधि की ओर यात्रा कैसे होगी?

शिविर के छः दिनों में हमें ध्यान और समाधि की दिशा में आगे बढ़ना है। प्रथम तीन दिनों में अगर हमने ध्यान भी साध लिया तो आधी यात्रा हो जाएगी। अगले तीन दिनों में हम समाधि को पकड़ पाएंगे।

इस जगत में सामान्य व्यक्ति दर्शक की भांति जीता है। बाहर का जगत उसके लिये दृश्य है। दृश्य से मेरा मतलब सिर्फ दिखाई पड़ने वाला ही नहीं; कान का दृश्य ध्वनि है, जीभ का दृश्य स्वाद है, नाक का दृश्य सुगंध है, त्वचा का दृश्य स्पर्श है। इन सब को हम एक शब्द में कह लें-ज्ञेय या विषय कहना उचित होगा। दृश्य कहने से लगता है-आँख से देखा गया। तो इन्द्रियों से जो भी जाना जा रहा है उसे हम ऑब्जेक्ट अथवा विषय कह लें तो ज्यादा अच्छा होगा, एक शब्द में बात आ जाएगी। तो संसार हमारा विषय है। हम पूरी तरह इस विषय की ओर ही उन्मुख हैं और अपने आप को भूल बैठे हैं–यह हमारी सामान्य अवस्था है संसार मे जीने की। जो भी विषय हमारे सामने आता है हमारी पूरी चेतना को खींच लेता है। किसी

सुन्दर दृश्य को देखकर हम उस सुन्दरता में ही पूरे चले जाते हैं, पीछे कुछ बचता ही नहीं। स्वयं के होने का कोई एहसास नहीं रहता। आप सड़क पर जा रहे हैं, हजार रुपये का नोट पड़ा हुआ दिखाई दिया। भीतर लोभ की तरंग उठी और वह तरंग हमारी पूरी चेतना को हजार रुपये के उस नोट पर ले जाती है। इस नोट को उठाने में हम लग जाते हैं। इसमें अपना स्मरण हमें बिलकुल नहीं है। हम मूर्च्छित व्यवहार कर रहे हैं। एक सुन्दर स्त्री सामने से गुजरी, मन में वासना उठी और उस सौन्दर्य के साथ हमारा पूरा चित्त वहाँ चला गया। वासना में हम अचेत से हो गये। पीछे कुछ बचा ही नहीं, हमें स्वयं का होश न रहा। तो सामान्य स्थिति हमारी ऐसी है–चाहे वह लोभ हो, वासना हो, किसी चीज का मोह हो, भय हो–ये विविध घटनाएं बाहर घटती रहती हैं और इसमें हमारी पूरी चेतना बह जाती है, पीछे हम कुछ बचते ही नहीं–ऐसी हमारी साधारण संसार की अवस्था है।

ध्यानी की अवस्था कहाँ से शुरु होती है?....जब भीतर जन्मता है साक्षीभाव। ठीक है, बाहर हजार रुपये का नोट है और भीतर मैं भी हूँ। मेरे भीतर लोभ की तरंग उठी मैं इसको भी जान रहा हूँ। मेरा हाथ आगे बढ़ा हजार रुपये का नोट उठाने को, पीछे कोई खड़ा इस बात को जान रहा है। दृश्य हजार रुपये का नोट है, भीतर कामना उठी है, लोभ ने पकड़ लिया है, हाथ आगे बढ़ रहा है, क्रिया हो रही है नोट उठाने की और मैं इसको जान भी रहा हूँ तो मैं साक्षीभाव में आया। मैं इस घटना से भिन्न हुआ। कार निकली, कार की वजह से मेरे अन्दर एक कंपन पैदा हुआ..... काश ऐसी मंहगी गाड़ी मेरे पास हो! एक वासना उठी और भीतर से मैं इस पूरी घटना का निरीक्षण कर रहा हूँ। मेरी सौ प्रतिशत ऊर्जा कार के पीछे नहीं चली गई। समझो पचास प्रतिशत गई, कामना में इन्वॉल्व हुई और पीछे पचास प्रतिशत बची हुई है, मेरे स्वयं के होने का एहसास भी मुझे हो रहा है। कार है, कार की कामना है और मैं हूँ। जहाँ मेरा होना भी पीछे आ गया वहाँ साक्षीभाव आ गया। मैं मात्र एक गवाह हूं, मेरे सम्मुख घटना घटी। मैं अपने आप को भूला नहीं हूँ, मैं खोया नहीं हूँ।

जैसे कोई बेटा शहर जा रहा है तो घर के बड़े बुजुर्ग कहते हैं 'अपना ख्याल रखना'। इसका मतलब केवल इतना ही नहीं है कि 'टेक केयर ऑफ योरसेल्फ'; इसका मतलब बड़ा गहरा है। अपना ख्याल रखना–आत्मस्मरण। शहर में नये-नये दृश्य होंगे; बड़े आकर्षक, चकाचौंध करने वाली चीजें होंगी; तुम अपने आप को

भूल न जाना। 'अपना ख्याल रखना'–ये तीन शब्द साक्षीभाव की तरफ इशारा हैं। अपना ख्याल रखने में एक प्रकार की टूट है, वह जो दृश्य था, हम उसके द्रष्टा या साक्षी बने। मैं उस दृश्य से भिन्न पृथक कोई हूँ। जब यह कार नहीं गुजरी थी तब भी मैं था; कार गुजरी, मेरे अन्दर कामना उत्पन्न हो गई, अभी भी मैं हूँ। कार भी चली गई, हो सकता है यह कामना अभी भी थोड़ी देर मेरे मन को उद्वेलित करती रहे, फिर यह कामना भी विलीन हो जाएगी। यह तरंग उठी, यह तरंग गिर जाएगी। तब भी मैं हूँ। मेरा होना भीतर बना ही हुआ है, कार के पहले भी, कार की कामना के साथ भी और कामना के चले जाने के बाद भी। हर चीज में मेरे होने का भाव बना ही रहे कि मैं एक पृथक तत्व हूँ। दृश्य बदल रहे हैं बार–बार, लेकिन जो शाश्वत तत्व है मेरे भीतर–मेरा होना–वह बना ही रहता है। कितनी चीजें आईं गईं, कितनी घटनाएं घटीं, लेकिन मैं तो सदा हूँ। कभी मैं बच्चा था, फिर मैं जवान हुआ, अब मैं बूढ़ा होने लगा; मेरे भीतर एक तत्व तो ऐसा है जो बचपन में भी था, जवानी में भी था, बुढ़ापे में भी है, तभी तो मैं जानता हूँ कभी मैं बच्चा था, फिर शरीर युवा हुआ, मन युवा हुआ, फिर शरीर बूढ़ा हो गया, मन भी बूढ़ा होने लगा लेकिन वह तत्व अभी भी मौजूद है भीतर। ऐसा समझो एक यात्री ट्रेन में बैठा है, दिल्ली स्टेशन आया उसने दिल्ली के दृश्य को देखा, आगरा स्टेशन आया उसने आगरा को भी देखा, झांसी आया उसने झांसी को भी देखा। निश्चित रूप से यह यात्री स्वयं न तो दिल्ली है, न आगरा है, न झांसी है, यह तो इन तीनों से भिन्न कोई और है। लेकिन

हम साधारणत: संसार में क्या कर रहे हैं....जब मैं बचपन के स्टेशन से गुजरा तो कहने लगा मैं बच्चा हूँ, जब मैं जवानी के स्टेशन से गुजरा तो वहाँ मैं इन्वॉल्व्ड हो गया और कहने लगा कि मैं जवान हूँ। मैं स्वयं को भूल ही गया कि मैं यात्री हूँ। अभी जवानी के स्टेशन पर गाड़ी रुकी है कुछ साल, फिर वहाँ से चल दी। बुढ़ापे पर पहुँच कर कहने लगा कि मैं बूढ़ा हूँ। नहीं, मैं इनमें से कोई भी नहीं हूँ। मैं सिर्फ जानने वाली वह चेतना हूँ। दृश्य बदलते गये, घटनाएं बदलती गईं, मैं उन सबके बीच में से गुजरा साक्षी बनकर, एक गवाह मात्र!

अब एक कदम और, साक्षी के आगे। साक्षी में एक प्रकार से टूटना हुआ। मैं दिल्ली से भी टूट गया, मैं आगरा से भी टूट गया, मैं झांसी से भी टूट गया। एक प्रकार की तटस्थता आई, मैं सबसे भिन्न हूँ। इसमें एक सूक्ष्म अस्मिता आई। अहंकार का एक सूक्ष्म रूप आया–मैं भिन्न तथा पृथक हूँ। इस साक्षीभाव के साथ यदि प्रेमभाव भी जुड़ जाये, आत्मस्मरण तो बना रहे लेकिन एक लगाव भी हो। जब दिल्ली स्टेशन पर गाड़ी खड़ी है, जब मैं बचपन में हूँ और जो घटनाएं घट रही हैं उनके साथ मैं प्रेमपूर्ण ढंग से निमग्न हूँ आत्मस्मरण के साथ। इसमें टूट जैसा नहीं है। दिल्ली स्टेशन का होना, मेरा होना, अन्य यात्रियों का होना एक विराट घटना है, मैं इस समय इसका एक छोटा सा हिस्सा हूँ। हम इस भाव से जब होश को लेते हैं तब उसका नाम हुआ ध्यान अर्थात् साक्षीभाव में वह जो तटस्थता थी वह विदा हुई। एक लगाव, प्रीति, एक जोड़ महसूस कर रहे हैं हम। ध्यान उदासी में नहीं ले जाता बल्कि खुशी में ले जाता है, आनन्दमग्नता में ले जाता है। अकेला साक्षीभाव हमें उदास कर देता है। इसलिये जो लोग सिर्फ साक्षीभाव साधते हैं वे इस सगुण ब्रह्म से, इस जगत से टूट जाते हैं, वे अपने भीतर सिकुड़ जाते हैं। ऐसा होना उसका अनिवार्य परिणाम है; इसलिये साक्षीभाव को बहुत देर तक साधने की जरूरत नहीं, वह एक स्टेपिंग स्टोन है आत्मस्मरण दिलाने के लिये कि मैं यात्री हूँ। एक बार इतना ख्याल आ गया अब टूटे मत रहना। जो भी दृश्य सामने आए उसके साथ 'फुल इन्वॉल्वमेंट विथ अवेयरनेस'। तो संसारी का 'इन्वॉल्वमेंट' कैसा था–'विदाउट अवेयरनेस'। संसार में वह स्वयं को भूल कर दृश्य में खो गया था; अब ध्यान में हम स्वयं का स्मरण रखते हुए दृश्य के साथ एकात्म हो रहे हैं। हम फिर से जुड़ रहे हैं। तो साक्षीभाव से आगे हमने एक कदम और उठाया जुड़ने का;

अर्थात् साक्षीभाव + प्रेम। प्रेम ही जोड़ने वाला तत्व है, अकेला साक्षीभाव हमें तोड़ देता है। इसलिये ओशो बार-बार कहते हैं, 'मेरे संन्यास के पक्षी के दो पंख हैं–होश और प्रेम'। एक पंख से यात्रा नहीं होगी, दोनों पंख चाहिये।

तो जो लोग अकेला साक्षीभाव साधेंगे वे उड़ नहीं सकते। और जो अकेला प्रेम को साधने की कोशिश करेंगे वे भी नहीं, क्योंकि वे आत्मविस्मरण में चले जाएंगे। अकेला प्रेम तुम्हें मूर्छित प्रेम में ले जाएगा और अकेला होश तुम्हें प्रेमहीन होश में ले जाएगा। और साधना क्या है? हमें प्रेमपूर्ण सजगता 'लविंग अवेयरनेस, मेडिटेशन विथ फीलिंग्स। कॉन्शसानेस विथ फीलिंग्स'। हम जिसे जान रहे हैं हम उससे पृथक और भिन्न नहीं हैं। साक्षीभाव में हम अपनी पृथक-सत्ता मानने लगते हैं जो कि एक भ्रान्ति है वास्तव मे ऐसा है नहीं । जब हम प्रेमपूर्ण सजगता में आते हैं तब हम पाते हैं कि जो भी दृश्य, जो भी विषय मेरे सम्मुख हैं मैं अंतरंग रूप से उसका हिस्सा हूँ। एक ही जड़ से सारे पत्तों को रस जाता है, एक ही सागर का जल सारी मछलियों का जीवन है, एक ही वायुमंडल हम सब की श्वास का स्रोत है। वास्तव में हम अलग अलग नहीं हैं।

कोई और सवाल आपके मन में हों तो फिर कल पूछ लें। आज रात्रि इस प्रेमल-ध्यान में डूबकर निद्रा में प्रवेश करें। वह नींद फिर साधारण नहीं रह जाएगी, समाधि जैसी हो जाएगी। ओशो कहते हैं-प्रेम एवं ध्यान दोनों साधन हैं; समाधि साध्य है। होश व भाव दो मार्ग हैं-योग तथा भक्ति- दोनों की मंजिल समाधि है। धन्यवाद। शुभरात्रि!

प्रेमं शरणं गच्छामि!

अध्याय नौ

अहम्-मुक्त हों प्रेम से भरें

प्रश्नसार–

1. प्रेमपूर्ण हृदय के विकास में क्या-क्या बाधाएं हैं?
2. अतीत की घटनाओं के प्रति आक्रोश से मुक्ति कैसे?

प्रश्न—प्रेमपूर्ण हृदय कैसे विकसित हो, इसमें कौन-कौन सी बाधाएं हैं?

बहुत नहीं, बस एक ही बाधा है- अहंकार। अहंकार की ही शाखाएं हैं- कामनाएं, क्रोध-कलह, मोह-ईर्ष्या, द्वेषभाव आदि जहर, जो प्रेमरूपी अमृत को नष्ट कर देते हैं। हम कहने भर को सभ्य और सुसंस्कृत हो गए हैं। भीतर जंगली जानवर मौजूद है। अहंकार रूपी आतंकवादी अड्डा जमाए बैठा है। ऊपर से शहरी, सुशिक्षित; अंदर से खूंखार पशु, आदिवासी। अभी हमें **आदमी** बनना है-जागरूक, प्रेमपूर्ण, करुणावान, उदार; हृदय की संवेदनशीलता को जगाना है। सुनो यह गीत-

सब कुछ है फिर भी कुछ खो रहा है आदमी,
होना था क्या, क्या हो गया है आदमी!
इस तरफ कुंआ और उस तरफ खाई है,
बीच में तलवार पर चल रहा है आदमी।
जिंदगी तो बस यूं ही नाम की है जिंदगी,
अनचाहे बोझ सी ढो रहा है आदमी।
आंखों को मूंदकर सपनों में डूबकर,
बारूद के ढेर पर सो रहा है आदमी।
सब कुछ कर सकता, चाहे जो बन सकता,
आदमी भर हो नहीं पा रहा है आदमी।

आदमी का पूरा विषैला इतिहास बारूद के ढेर से निर्मित है। पिछले तीन हजार वर्षों के ज्ञात इतिहास में लगभग पांच हजार बड़े युद्ध हुए। ये युद्ध तो वे हैं, जिनको इतिहास में दर्ज किया गया है। उन अनगिनत झगड़ों का तो कहीं जिक्र भी नहीं आया, जिनमें रोज सौ-दो-सौ लोग मारे जाते हैं। पारिवारिक तनावों और अशांतियों का उल्लेख तो इतिहास में जगह पाता ही नहीं। इतने कंकड़-पत्थरों के बीच प्रेम का बीज कैसे अंकुरित होगा? क्या रास्ता हो सकता है?

गौतम बुद्ध आष्टांगिक मार्ग में सम्यक् स्मृति की बात करते हैं। काश, अपना स्मरण आ जाये, स्वयं के प्रति जागरूकता, सेल्फ रिमेम्बरिंग; चैतन्य के दीया तले अंधेरा मिट जाए तो हम सारे झगड़े-झंझटों से बच सकते हैं।

हमारे जीवन के दो तल हैं। सामान्यत: हम अपने अहंकार के तल पर जीते हैं,

आत्मा के तल पर नहीं। आत्मा को हम बिलकुल भूले हुए हैं। आत्म- विस्मरण में हमारा पूरा जीवन जीया जा रहा है। हम अहंकार के तल पर जीते हैं और उस अहंकार से ही ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, प्रतियोगिता की भावना, घृणा, दूसरों से तुलना और सारी नकारात्मक भावनाएं उपजती हैं।

जिस पर बैठा है उसी डाली को काट रहा,
किस्मत के नाम पर रो रहा है आदमी।
पूरब भी जाना और पश्चिम भी जाना है,
द्वंद्व में ही टूटता जा रहा है आदमी।
कितने रोज आते हैं कितने चले जाते हैं,
काल से बेखबर काल खो रहा है आदमी।
छाया से जूझ रहा लड़-लड़ कर टूट रहा,
बीज फिर भी झगड़ों के, बो रहा है आदमी।
आदर्श की आड़ में, अहंकार की चाल में,
व्यर्थ में शहीद सा हो रहा है आदमी।
तर्कों के तीर चला, बहाने को वजह बता,
गुस्से की आग में जल रहा है आदमी।

बुद्ध कहते हैं, जो व्यक्ति अपने भीतर सम्यक् स्मृति से भर जाता है, आत्मस्मरण से, सेल्फ रिमेंबरिंग से, जो भीतर ध्यान में डूबता है, सजग होते ही वह अपने भीतर अंधकार को नहीं पाता, अहंकार को कहीं नहीं पाता। अहंकार मिलता ही नहीं।

बगदाद में खलीफा उमर नामक एक सूफी बादशाह हुआ। उसका शत्रु बारह वर्षों से निरंतर उसके राज्य पर आक्रमण कर रहा था। उमर उसकी सेनाओं को बारंबार सीमांत तक खदेड़ आता। अंततः एक दिन ऐसा हुआ कि शत्रु सम्राट का घोड़ा घायल हो गया। दुश्मन जमीन पर चारों खाने चित्त। उमर उछलकर उसकी छाती पर सवार। ज्यों ही उमर उसके सीने में तलवार भोंकने को हुआ, तभी उसने उमर के मुंह पर थूक दिया। उमर ने तलवार वापस खींचकर म्यान में रख ली। दुश्मन तो आश्चर्यचकित रह गया। उसने पूछा –'बारह साल बाद तुम्हें यह मौका मिला था, मुझे मारने का। क्यों छोड़ दिया?'

उमर बोला –'क्योंकि तुम्हारे थूकने की वजह से मुझे क्रोध आ गया। और मैं तुम्हें गुस्से से मारना नहीं चाहता।'

उसने कहा –'तो क्या इतने सालों से बिना क्रोध के लड़ रहे थे?'

उमर ने जवाब दिया –"निश्चित ही! मैं अपने राज्य की हिफाजत के लिए, प्रजा की रक्षा के लिए तुमसे लड़ता था। तुम्हारे ऊपर क्रोध की वजह से नहीं, बल्कि अपना कर्तव्य निभाने की खातिर शस्त्र उठाता था। किंतु अभी, जब तुमने मेरे चेहरे पर थूका, तो व्यक्तिगत रूप से मेरे भीतर तुम्हारे खिलाफ क्रोध की लपटें जलने लगीं। इस क्षण अगर तुम्हें मार दूं, तो दुनिया तो यही समझेगी कि मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूं, जनता पर करुणा कर रहा हूं; लेकिन मेरी आत्मा जानती है कि मैं गुस्से में अहंकारवश यह कृत्य कर रहा हूं। उठो, जाओ। शांत हो जाने पर कल फिर युद्ध करूंगा।"

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अहंकार आठ प्रकार के होते हैं। यह और अच्छा होगा कि चार जोड़े भूत और भूतनी कहें। जब ये आदमी पर हावी हो जाते हैं तो बुद्धि-विवेक मारा जाता है। आदमी नशे की हालत में कुछ कर गुजरता है, जिसके लिए बाद में पश्चाताप करता है। प्रत्येक व्यक्ति में कोई एक टाइप खासकर हावी होता है। अपने व्यक्तित्व को पहचानो-

अहंकार के चार जोड़े

विधायक भूत	नकारात्मक भूत
1-मैं सही हूं (आई ऐम राइट)	5-तुम गलत हो (यू आर रौंग)
2-मैं धन संचय करूंगा (आई विल पज़ेस)	6-तुम्हें संचय न करने दूंगा (यू कैन नॉट पज़ेस)
3-मैं हावी होऊंगा (आई विल डॉमिनेट)	7-तुम्हें हावी न होने दूंगा (यू कैन नॉट डॉमिनेट)
4-मैं ज्ञानी हूं (आई नो)	8-तुम अज्ञानी हो (यू डोंट नो)

विधायक या परकेंद्रित भूतों के उभय लक्षण

मधुरभाषी, भले ही असत्य, बहिर्मुखी, बड़ी मित्र-मंडली, सामाजिक, औपचारिक, शीलवान, व्यवस्था व परम्पराप्रिय, वाचाल, परमार्थी, सक्रिय,

खुशामद-पसंद, खुशामदी भी, प्रेमी, समर्पित, भक्तिमार्गी, प्रसन्न, उत्साही, ऊर्जावान, हार्दिक, भावुक, राजसी, परकेंद्रित–दूसरों का ज्यादा ख्याल।

व्यक्तिगत लक्षण

1. **मैं सही हूं**– प्रशंसा पाने की चाह, प्रेम व यश की आकांक्षा, अपनी भावनाओं का दमन करने की प्रवृत्ति, कुत्तों से विशेष चिढ़, शांत, शीलवान, सच्चरित्र, मृदुभाषी, संतुष्ट, धैर्यवान, सज्जन, मधुर व्यवहारी, सहिष्णु, शिष्ट।
2. **मैं परिग्रह करूंगा**– लोभी वृत्ति, सुविधाओं की कामना, पूंजीवादी विचार, जमीन-जायदाद-आभूषणों में रस, सुख-सुविधा-सौंदर्य पसंद, सुरक्षा-संपन्नता में रुचि, विकासवादी, अमीर, व्यापारी, इंडस्ट्रियलिस्ट।
3. **मैं हावी होऊंगा**– मोही वृत्ति, सलाहकार, सेवाभावी, शक्ति एवं शासन प्रेमी, मेहमान नवाज़ी का शौक, भोजन खिलाने में रस, शिक्षक, धर्मगुरु, नर्स, डॉक्टर, समाजसेवक बनने की रुचि, तानाशाही प्रवृत्ति, परोपकारी, सुव्यवस्थापक, संबंधों में रस, प्रेमी, करुणावान प्रकृति, सलाहकार।
4. **मैं तर्कसंगत (ज्ञानी) हूं**– बुद्धिजीवी, पढ़ने व लेखक बनने का शौक, समन्वयवादी, तार्किक, ज्ञानी, पंडित, न्यायप्रेमी, शास्त्रज्ञानी, वकील, कलाकार, सिद्धांतवादी, परंपरा-प्रेमी, सिखाने में रुचि, कवि, कहानीकार, दार्शनिक।

नकारात्मक या स्वकेंद्रित भूतों के उभय लक्षण

सत्यभाषी, भले ही कटुतापूर्ण, बहुम कम दोस्त, अंतर्मुखी, एकांतप्रिय, झगड़ालू, मूडी, सत्ता विरोधी, मौलिकता प्रिय, मितभाषी, स्वार्थी, निष्क्रिय, खुशामद-नापसंद, प्रशंसा करने में कृपण, ज्ञानी, संकल्पवान, ध्यानमार्गी, उदास, उमंग रहित, कमजोर, बौद्धिक, विचारक, तामसी, स्वकेंद्रित–स्वयं पर ज्यादा ध्यान।

व्यक्तिगत लक्षण

5. **तुम गलत हो**– निंदा करने में रस, कुत्तों से विशेष लगाव, मजाक उड़ाने की वृत्ति, अभिव्यक्ति में कुशलता, कलात्मक आयामों में रस, सत्यवादिता, ईमानदारी, प्रामाणिकता, सरलता, सहजता, स्वाभाविकता।

6. **तुम्हें परिग्रह न करने दूंगा**– ईर्ष्यालु, समानता-प्रेमी, प्रायः उदास, चोर, डाकू, पत्रकार बनने का शौक, धनपतियों पर क्रोध, कम्युनिस्ट विचारधारा, न्यायपूर्ण, साम्यवादी विचार, ईमानदारी, आर्थिक समानता में रुचि, पत्रकारिता में रस।

7. **तुम्हें हावी न होने दूंगा** –विद्रोही, क्रोधी प्रवृत्ति, स्वतंत्रता प्रेमी, द्वेषभाव को लंबा खींचने की आदत, ट्रेड यूनियन लीडर बनने का शौक, अधिकारियों व प्रतिष्ठित लोगों से नाराज, अन्याय का शत्रु, आत्मनिर्भर, स्वानुशासनवादी, एकांतप्रिय, ध्यानी प्रकृति, स्वतंत्रता में रस, आदर्शवादी विचार, मौलिकता व नवीनता में रुचि।

8. **तुम अज्ञानी (तर्कसंगत नहीं) हो** –आलोचक वृत्ति, छिद्रान्वेषी, क्रांतिकारी विचार, आदर्शवादी, नवीनता प्रेमी, परिवर्तन-पसंद, कुतर्की, पढ़ने-लिखने में रुचि, कटाक्ष करने में कुशल, वकील, न्यायाधीश, समाज-सुधारक, बुद्धिजीवी, प्रगतिशील, वैज्ञानिक, व्यंग्यकार, हास्यकवि।

सावधान!- प्रेम में बाधा पहुंचाने वाले 'अहंकार रूपी भूत' उपरोक्त आठ प्रकार के होते हैं। आप अपना भूत पहचानें और उसके प्रति सजगता साधें। जब आप जागते हैं, भूत सो जाता है। जब आप सोते हैं तो भूत सिर पर सवार हो जाता है। ज्यादा से ज्यादा जागरूकता की साधना ही उसे नष्ट कर देगी। शेष जो बचेगा, वह प्रेमभाव है।

अहंकार की चट्टान हटे तो प्रेम का झरना बह उठता है।

गालियां या गीत?

प्रश्नः अतीत में घटी घटनाओं के प्रति मेरे मन में बहुत आक्रोश छिपा है। जिन व्यक्तियों ने मुझे अपशब्द कहे, अभद्र व्यवहार कर कष्ट पहुंचाया; उनमें से कुछ की मृत्यु भी हो चुकी है किंतु मेरा क्रोध नहीं मरा। मैं क्या करूं?

देखें वाणी का कमाल! जरा से कठोर शब्द, आज तक कांटों की तरह चुभे हैं। भाषा में वर्णाक्षर वही बावन हैं, चाहो तो उनसे गीत बना लो, चाहो तो गालियां बना लो। कितना गहरा प्रभाव पड़ता है शब्दों का हमारे ऊपर! अचेतन

मन में उतर जाता है। जिंदगी बीत जाती है, घाव नहीं मिटते। ओशो ने इन अतीत के संचित घावों से मुक्ति की अनूठी विधि दी है—रेचन, कैथार्सिस।

आप 15 दिन तक रोज 15 मिनट गुस्से का रेचन करें। कमरे के खिड़की दरवाजे बंद करके एक तकिया उठा लें, और जिस व्यक्ति पर नाराजगी है उसकी कल्पना कर, तकिए पर अपना गुस्सा निकाल लें। चीखें-चिल्लाएं, मुक्के मारें। लातें फटकारें, घूसे चलाएं। गालियां बक दें, तकिए को पैरों से कुचलकर अपमानित कर दें। उठा-उठाकर पटक दें। जो मन में आता हो वह कह दें। 15 मिनट में चित्त निर्भार हो जाएगा। कई वर्षों से जो बोझ आप ढोते आ रहे हैं, वह सिर से उतर जाएगा।

ओशो ने अतीत के भार से मुक्त होने की अनेक ध्यान-विधियां निर्मित की हैं, जैसे सक्रिय ध्यान, देववाणी ध्यान, जिबरिश, नो-माइंड, बॉर्न-अगेन... इनमें से कोई एक विधि चुन लें। ओशोधारा की नई ध्यान पद्धतियों में से रीबर्थ-मेडिटेशन एवं लीला ध्यान बहुत उपयोगी साबित होगा।

जैसे झाड़ू-बुहारी लगाकर हम रोज घर को साफ सुथरा कर लेते हैं, या स्नान करके अपने तन को स्वच्छ कर लेते हैं, ठीक वैसे ही समय-समय पर अपने मन को निर्मल कर लेना भी आवश्यक है। मन पर अतीत की धूल, कर्ममल जम जाती है। नकारात्मक भावनाएं संग्रहीत हो जाती हैं। उनका विसर्जन आवश्यक है। इसे आत्मा का स्नान समझें। कैथार्सिस करके 15 मिनिट शवासन में शांत लेट जाएं, और स्वयं के होने के बोध से भरें। 8-10 दिनों में, या जब भी मन बोझिल महसूस हो, भावावेग विसर्जन की इस प्रक्रिया को दोहरा लेना चाहिए।

एक बात स्मरण रखें, केवल कैथार्सिस या रेचन पर्याप्त नहीं है। इससे पुराने घाव तो भरेंगे किंतु नए घावों का निर्माण न रुकेगा। नई कर्ममल न जम पाए इसके लिए अनिवार्य है कि हम वर्तमान में होशपूर्वक जीना सीखें। दो उपाय सहयोगी होंगे।

पहला, अपने अहंकार के भूत के प्रति जागें। आठ प्रकार के भूतों में से कोई एक प्रत्येक व्यक्ति पर हावी रहता है। (नोट —पहले आठ प्रकार के भूतों के

विषय में चर्चा हो चुकी है) उसे पहचानें, अपने अहंकार के प्रति सचेत रहें।

और दूसरा, क्रोध के वशीभूत होकर न कुछ सोचें, न कुछ बोलें, न ही कुछ करें। यदि आप थोड़ा सा टालने में, स्थगित करने में कुशल हो जाएं तो चमत्कार घट जाएगा।

सोवियत रूस के अद्‌भुत संत जॉर्ज गुर्जिएफ ने अपनी जीवन कथा में लिखा है कि जब वह नौ साल का था, तब उसके पिता की मृत्यु हो गई। मरने के पूर्व पिता ने गुर्जिएफ को बुलाकर कहा कि बेटा, वसीयत में तुझे देने के लिए मेरे पास कोई संपत्ति तो है नहीं। सिर्फ एक छोटी सी शिक्षा तुझे देकर जा रहा हूं–गुस्से के नशे में बेहोश होकर कभी कुछ मत कहना या करना। जरा ठहर जाना। 24 घंटे बाद जो करना हो, करना। आक्रोश का जोश उतर जाएगा, 24 घंटे में होश आ जाएगा। जॉर्ज गुर्जिएफ ने लिखा है कि मरणासन्न पिता को दिए वचन को मैंने निभाया, और जिंदगी भर मैं कभी क्रोध कर ही न सका। 24 घंटे में या तो स्वयं की भूल समझ में आ गई, तब जाकर मैंने क्षमा मांग ली। अथवा, पता चला कि दूसरा व्यक्ति किसी गलतफहमी में है, तब जाकर उसे प्रेम से समझाया। बातचीत से मामला हल हो गया। दोंनो ही स्थितियों में झगड़ा समाप्त हो गया और गहरी मित्रता बन गई।

अपने अहंकार के प्रति होश साधें, और अशुभ को यथासंभव स्थगित करें–ये दो विधियां वर्तमान क्रोध से छुटकारा दिलाएंगी। रेचन की विधि विगत क्रोध की ग्रंथियों से मुक्त करेगी।

शांत व शीलवान व्यवहार कैसे?

इन्हीं मित्र ने एक और प्रश्न पूछा है कि भावी जीवन में कोई अशीलवान व्यवहार करे, तो मेरे अंदर से प्रतिक्रिया में अभद्रता न आए, इस हेतु भविष्य के संभावित क्रोध से बचने का, प्रिवेंशन का उपाय बताएं।

अपनी जीवन ऊर्जा को सृजनात्मक कार्यों में संलग्न करें। जिस काम में आपको आनन्द आता है–जैसे कविता लिखना, खेलना, बगीचे में पौधे लगाना,

प्रातः भ्रमण, चित्रकला, नृत्य, गायन, भोजन पकाना... या किसी भी रसपूर्ण कृत्य में कम से कम एक घंटा प्रतिदिन देना शुरु करें। धीरे-धीरे आपकी शक्ति को एक नई दिशा मिल जाएगी। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि विध्वंसक भावनाओं में जो शक्ति प्रवाहित होती थी, वह रचनात्मक दिशा में प्रवाहित होने लगेगी। क्रमशः निगेटिव भाव कुम्हलाने लगेंगे और पॉजीटिव भाव फलने-फूलने लगेंगे।

अगर हम किसी नदी पर बांध बनाकर, एक नहर के द्वारा जल को खेतों में सिंचाई के लिए ले जाएं, तो नदी में बहने वाले पानी की मात्रा कम हो जाती है। तब वर्षा में नदी की बाढ़ पहले जैसा नुकसान नहीं पहुंचाती। वही पानी फसल पैदा करने या बिजली उत्पन्न करने के काम आ जाता है। प्रत्येक शक्ति न्यूट्रल होती है। उसका उपयोग कैसे किया जाता है, वह हम पर निर्भर है। परमाणु की ऊर्जा से चाहें तो सारी पृथ्वी को स्वर्ग में रूपांतरित कर सकते हैं, या हिरोशिमा-नागासाकी सा मरघट बना सकते हैं। ऐसी ही हमारी जीवन ऊर्जा है। यदि सृजन में सदुपयोग न किया तो विध्वंस में दुरुपयोग होगा।

...यह देखते हैं विद्युत बल्ब जल रहा है, टेबल फैन चल रहा है। अगर गीजर या दो हजार वाट का हीटर ऑन कर दिया जाए तो अभी बल्ब की रोशनी मंद पड़ जाएगी। पंखे की गति धीमी हो जाएगी। क्योंकि हीटर या गीजर बहुत ज्यादा बिजली खींच लेंगे। यदि हम अपनी जीवन ऊर्जा को प्रेम, मैत्री, दया, करुणा, वात्सल्य, शुभ कर्मों, आनन्दपूर्ण कृत्यों एवं सृजनात्मक आयामों में संलग्न कर दें, तो नकारात्मक आदतें स्वतः कम या समाप्त हो जाएंगी।

अभी जॉर्ज गुरजिएफ की बात हमने की। पिता ने कहा- बेटे, एक छोटा सा वचन मुझे दे कि कभी गुस्से का मौका आए तो 24 घंटे रुक जाना। मरते हुए पिता को दिया गया आश्वासन गुरजिएफ कभी भूल न सका। जब कभी क्रोध का अवसर आया, उसने कहा-इस संबंध में कल बात करेंगे। कल तक के लिए मामला स्थगित।

गुरजिएफ जिंदगी भर कभी क्रोध कर ही न सका। क्रोध का भूत जब सवार होता है, तो एक प्रकार का नशा छा जाता है। शरीर की अंतःस्रावी ग्रंथियां विषैले हॉरमोन्स छोड़ देती हैं। उन मादक द्रव्यों के प्रभाव में ही पागलपन हो सकता है।

उनका असर थोड़ी देर रहता है। कुछ समय बाद होश आ जाता है। चौबीस घंटे बाद तो गुस्सा करना असंभव हो जाएगा। अगर हम अपने गुस्से को सिर्फ स्थगित करना सीख लें तो बड़े उपद्रवों से बच सकते हैं। शायद तुरंत जागरण न घट पाए. .. कोई बात नहीं, कम से कम स्थगन तो हो ही सकता है।

संक्षेप में पुनः दोहरा दूं–**अतीत का क्रोध रेचन से, वर्तमान का क्रोध जागरण व स्थगन से तथा संभावी क्रोध प्रेम व सृजन से मिटेगा।** गीत रचो, नाचो, गाओ; गालियां स्वतः छूट जाएंगी। प्रेम में डूबो। करुणा से भरो।

प्रेम के बगैर कोई आदमी 'आदमी' नहीं होता–

सब कुछ कर सकता, चाहे जो बन सकता;
आदमी भर हो नहीं, पा रहा है 'आदमी'।

कलह की जड़ अहंकार को उखाड़ दो, प्रेम ही प्रेम से जिंदगी ओत-प्रोत हो जाएगी। किसी कवि ने सुंदर शब्दों में कहा है–

प्रेम की बात जमाने में निराली देखी,
प्रेम की प्रेम से फलती हुई डाली देखी।
प्रेम इंसान को 'इंसान' बना देता है,
प्रेम पत्थर को भी भगवान बना देता है।।

अथ प्रेमं शरणं गच्छामि!
भज ओशो शरणं गच्छामि!!

अध्याय नौ

प्रेम का शिखर है भक्ति!

;सद्गुरु ओशो शैलेन्द्र जी द्वारा प्रथम 'भक्ति-प्रज्ञा' शिविर, ऋषिकेश में दिया

प्यारे मित्रों, ओशो के सपनों की ओशोधारा में, ऋषिकेश के इस सुंदर गंगा-तट पर आप सब का हार्दिक स्वागत करता हूँ। आज ओशोधारा में एक नये प्रकार के कार्यक्रम का शुभारम्भ हो रहा है–'भक्ति समाधि शिविर'।

इस पहले सत्र में हम समझ लें कि वास्तव में भक्ति क्या है? महर्षि शांडिल्य के भक्ति-शास्त्र की शुरुआत यहीं से होती है–'ओम्, अथातो भक्ति जिज्ञासा'- आओ, भक्ति की जिज्ञासा करें। परमगुरु ओशो ने इस सूत्र पर प्रवचन देते हुए कहा कि सामान्यत: हमारा मन सोचता है परमात्मा के बारे में कि ईश्वर क्या है, कहाँ है, कैसे खोजें? और शांडिल्य शुरु करते हैं–अथातो भक्ति जिज्ञासा से। बड़ी अजीब बात है। भगवान की जिज्ञासा नहीं, पहले भक्ति की जिज्ञासा। भक्ति क्या है, वह कैसे हमें उपलब्ध हो? मुख्य सवाल यही है।

यदि हमारे पास भक्त का हृदय नहीं है, हमने अपने भीतर प्रेम की गुणवत्ता विकसित नहीं की तो भगवान के दर्शन कहीं भी न हो सकेंगे। जैसे कोई अंधा पूछे 'सूरज, चाँद, सितारे कहाँ हैं; बताओ?' तो उसका प्रश्न व्यर्थ है। समझदार अंधे को पूछना चाहिये कि मेरी आँख कैसे खुले, मेरी दृष्टि का इलाज कैसे हो? यह सवाल सार्थक है। वह पूछे 'सूरज का प्रमाण क्या है? रात को तारे दिखाई देते हैं, सिद्ध करो' तो हम उसकी बात पर हंसेंगे। 'फूलों में रंग होते हैं; तुम लोग बातें करते हो सतरंगे इन्द्रधनुष की, प्रमाण दो।' तो हम कहेंगे इन बेकार की बातों में समय बर्बाद न करो। अभी इन्द्रधनुष और फूलों की चर्चा न छेड़ो, तुम्हारी आंख कैसे ठीक हो पहले इसका हम उपाय करें।

यही मैं आपसे कहना चाहता हूँ हम शुरुआत भगवान से नहीं, बल्कि भक्ति की जिज्ञासा से कर रहे हैं। हमारे भीतर भक्ति का भाव कैसे उदित हो, वास्तव में भक्ति है क्या, हमारी आँख कैसे खुले? मैंने सुना है-

मुल्ला नसरुद्दीन इक्कीस साल का हुआ। युवावस्था के जोश में पहुँच गया पुलिस थाने और जाकर थानेदार से कहा कि मेरी प्रेमिका को खोजें, बतायें वह कहाँ है? थानेदार ने लिखने के लिये पेन उठाया और कहा–'आप उसका हुलिया वर्णन करें, नाम क्या है, रंग कैसा है, उम्र कितनी है?' नसरुद्दीन बोला–'मुझे क्या पता नाम! आप पुलिस वाले हैं, आपका काम है खोजबीन करना।'

थानेदार ने कहा कि नाम, पता-ठिकाना, रंग-रूप, लम्बाई, आयु इत्यादि बताओ, प्रेमिका का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। नसरुद्दीन ने कहा कि अब तक तो हम नाबालिग थे, फिलहाल हमारी कोई प्रमिका नहीं है। अभी तक हमने किसी से प्रेम किया ही नहीं है। आज ही तो 21 वर्ष के हुए हैं। हम तो पता लगााने आए हैं। ठीक किस्म की प्रेमिका मिल जाए तो फिर हम प्रेम करें। आप बताइये कहाँ है मेरी प्रेमिका, मेरी उम्र हो गई प्रेम करने की। थानेदार हंसने लगा, उसने कहा कि आप जिससे प्रेम करो वह आपकी प्रेमिका हो जाती है। कोई प्रेमिका पहले से रेडिमेड मौजूद तो होती नहीं है! प्रेम का भाव प्रेमिका को उत्पन्न करता है। ठीक वैसे ही मैं आपसे कहना चाहूंगा कि भक्ति का भाव भगवान को उत्पन्न करता है। किसी शायर ने अर्ज़ किया है-

मेरी जुस्तजू को शायद, अभी हौसला मिलेगा
मैं जहाँ भटक रहा हूँ, वहीं रास्ता मिलेगा।
जो खुलूस हो न दिल में, तो किसी को क्या मिलेगा?
न तुझे सनम मिलेंगे, न मुझे खुदा मिलेगा।

खुलूस यानी प्यार। हमारी आम धारणा है कि भगवान जब मिल जाएंगे तब भक्ति करेंगे। वही नसरुद्दीन वाला तर्क कि प्रेमिका मिल जाए फिर प्रेम करेंगे। पहले पक्का तो हो जाए कि कौन है सच्ची प्रेमिका। यह हमारा तर्क बिलकुल भ्रान्त है कि भगवान से मुलाकात के बाद फिर हम भक्ति-भाव में डूबेंगे। अभी तो निश्चितरूपेण तय ही नहीं हुआ कि भगवान है भी कि नहीं, कौन है, कहाँ है? दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं, सबकी अलग-अलग धारणाएं हैं। राम, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, शिव, गणेश, किस भगवान की भक्ति करें? यह वही मूर्खतापूर्ण प्रश्न है जो नसरुद्दीन पूछ रहा था। वास्तविक धार्मिक सवाल यह नहीं है कि कौन भगवान है, अथवा भगवान है या नहीं। वह तो भक्ति का भाव जब उत्पन्न होता है तब स्वत: भगवान जन्मता है। परमात्मा ने हमें नहीं पैदा किया, हमारा भक्ति-भाव परमात्मा को पैदा करता है। ऐसा कह सकते हैं-भक्त की दृष्टि से देखा गया जगत भगवत्ता से ओत-प्रोत नजर आता है। अत: सच्चा आध्यात्मिक सवाल यह नहीं है कि हम भगवान को कैसे एवं कहाँ खोजें।

असली सवाल यह है कि हमारे भीतर वह भक्त की दृष्टि, वह आँख, वह भाव, वह प्रेमपूर्ण नजरिया कैसे पैदा हो। परमात्मा की कृपा को अहसास करने वाला हृदय कैसे जन्मे? किसी सूफी ने गाया है–

ये सब तुम्हारा करम है आका, कि बात अब तक बनी हुई है।
मैं इस करम के कहाँ था काबिल हुजूर की बन्दा परवरी है।
जहाँ-जहाँ भी गए हैं करम ही करते गए हैं;
किसी ने मांगा न मांगा हो झोली भरते गए हैं।
उनकी रहमत का अंदाज बराबर देखो, मैं फकीरी में भी हूं तमंजर देखो;
बिना मांगे ही कितना मिल रहा मुझको, देखनेवालों मेरा मुकद्दर देखो।
तेरी इनायत मुझे दिल में छुपा लिया तूने,
करम किया अपना बना लिया तूने;
जहाँ कहीं मेरे कदम लड़खड़ाने लगे, निसार जाऊं वहीं आसरा दिया तूने।

उसका आसरा सदा ही मिल रहा है, उसे पाने का नहीं, हमारे संवेदनशील बनने का सवाल है। आश्चर्य यही है कि हमें उसका सहारा दिखाई क्यों नहीं पड़ रहा! भगवान से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है भक्ति का भाव। प्रेमी अथवा प्रेमिका से ज्यादा अर्थपूर्ण है प्रेम का भाव। अगर मेरे भीतर प्रेम का भाव ही नहीं है तो मेरे लिये कोई भी प्रेयसी न हो सकेगी। यदि अन्दर मित्रता का भाव ही नहीं है तो कोई मेरा मित्र हो ही नहीं सकता। एक बार मित्रता का भाव उत्पन्न हो गया तो संसार में बहुत मित्र मिल जाएंगे।

इस दृष्टि से देखेंगे तो हम भगवान की खोज नहीं करेंगे बल्कि भक्ति की साधना में डूबेंगे। हम कैसे रूपांतरित और विकसित हों ताकि वह परम सत्य प्रगट हो सके? हमारी नजरों पर कौन सा पर्दा पड़ा है जिसे उघाड़ने पर प्रीतम से मिलन हो सके?

विरह-मिलन का खेल

भक्ति साधना के विविध आयाम हैं–प्रेमभाव, गरु या आराध्य के प्रति श्रद्धा और उनका स्मरण, समर्पण, अहंकार का मिटना, खुद का मिट जाना, खुदा का हो जाना, लीनता और एकता, अभिन्नता। फिर सारे जीवन के प्रति प्रीति उमगने पर विराट हो गई प्रीति का नाम है भक्ति। मुझे याद आता है ओशो की एक

किताब का शीर्षक–'जीवन ही है प्रभु और न खोजना कहीं'। बड़ा प्यारा नाम है; इसमें जीवन का सम्मान है।

किसी भी मार्ग से हम उस विराट तक पहुँचें वे सभी भक्ति के अंगोपांग हैं। ऋषि शांडिल्य ने भी अपने भक्ति सूत्र में कहा है कि योग, तंत्र, हठ, ध्यान, साक्षी, ज्ञान इत्यादि विविध मार्ग, सभी भक्ति के सोपान हैं। अन्ततः सब रास्ते भक्ति की मंजिल पर जाते हैं। यद्यपि योगी ऐसा कभी नहीं कहेंगे कि भक्ति को हम अपना अंग स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि संकीर्ण है। भक्त 'इनक्लूड' कर लेता है योग को भी। भक्त बहुत विराट हृदय का है। वह अन्य मार्गों को भी अपने में समाहित कर लेता है। अन्य मार्ग बड़ी संकीर्ण हैं; वे कहते हैं कि ध्यान यानी बस इस परिभाषा में जो आता है केवल वही। योग यानी बस यह, तंत्र यानी बस यह; इसमें भक्ति-वक्ति नहीं आती बीच में। लेकिन भक्त बहुत बड़े दिल का है। वह कहता है कि ये सब छोटी-मोटी धाराएं अन्त में आकर गंगा में मिल जाती हैं, महाधारा के साथ एक हो जाती हैं और विराट सागर तक पहुँच जाती हैं। छोटी धाराओं को इन्कार नहीं करता भक्त। सब चीजों का वह उपयोग कर लेता है। गंगा नदी कभी मना करती है कि यह कहाँ का गंदा पानी आ रहा है; यह मुझमें न मिले! गंगा मे जो मिल जाता है सब पवित्र हो जाता और सागर में समा जाता है। भक्ति की खूबी है कि अन्य अध्यात्म के जितने भी मार्ग हैं वह उनको भी अपना ही हिस्सा मानती है। शुरुआत के लिये ठीक... चलो, कहीं से भी शुरु करो। तुम्हें जो जंचता है वहीं से शुरु करो अंततः तो भक्ति में पहुँच जाना है और सागर को पा ही लेना है।

भक्ति का एक रूप है–विरह। मिलन तो होगा बाद में शुरुआत में तो विरह ही होगा। तड़फेंगे, रोएंगे, अपनी असहाय स्थिति को, हेल्पलेसनेस को महसूस करेंगे, वह विरह का भाव ही धीरे-धीरे मिलन में परिवर्तित होता है। एक विरोधाभासी बात और स्मरण रहे, मिलन के बाद विरह की अग्नि अधिक भड़कती है। जब तक मिले ही नहीं थे तब तक जो विरह था वह तो फीका-फीका था। ऊपर-ऊपर, सतही था। एक बार मिल लिये उसके बाद फिर बिछुड़ना होता है तब विरह और भड़क उठता है। मीरा कहती है 'अंसुअन जल

सींच-सींच प्रेम बेल बोई'। आंसुओं की बरसात होती है। कभी मिलन होता... फिर विरह हो जाता! फिर मिलन होता, फिर विरह हो जाता। जब तक जाना ही न था उसको तब तक विरह भी क्या खाक विरह था! जब एक बार जान लिया उसका आनन्द, फिर भक्त और तड़फता... और रोता है–

'अंसुअन जल सींच-सींच प्रेम बेल बोई,
अब तो बेल फैल गई आनन्द फल होई।'

भक्त शिकायत भी करता है, उलाहना देता है–

मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है।
अपने अरमानों की खुशबू को बिखेरा भी नहीं
दिल में जज़्बात का तूफान छिपाने के लिए
तजकरा प्यार का मैंने कभी छेड़ा भी नहीं
मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है...
मैंने वो ख्वाब तुम्हारा जो कभी देखा था...
उनकी ताबीर मेरे दिल की तकदीर नहीं
मेरी चाहत का तो अंदाज जुदागाना था...
गर मिलन हो न सका प्यार की तहकीर नहीं
मैंने खामोश निगाहों से तुम्हें पूजा है...
दिल में गुजरे हुए लम्हों की कसक बाकी है
जिंदगी के लिए इक यह भी सहारा होगा।
तुमको पाने की तमन्ना ने तो दम तोड़ दिया
तुमसे पाया जो ये गम तो हमारा होगा।
मैंने खामोश निगाहों से तुझे पूजा है...

भक्त कभी नाराज भी होता है। मैंने खामोश निगाहों से तुझे पूजा है...उलाहना देता है, गुस्सा होता है!

इक बार ही जीने की सजा क्यों नहीं देते।
गर हर्फे-गलत हूं तो मिटा क्यों नहीं देते।।
इस दर्दे-शबे-हिज्र की लज्जत है पुरानी।
देना है तो फिर दर्द नया क्यों नहीं देते।।

साया हूं तो फिर साथ न रखने का सबब क्या?
पत्थर हूं तो रास्ते से हटा क्या नहीं देते।।

कभी-कभी भक्त कहता है कि अब बहुत हो गया। शास्त्र तो यही कहते हैं कि तुम्हारा साया हूं, तुम्हारी माया हूं। अगर गलत अक्षर लिख गया है तुमसे... मिटा दो, पोंछ डालो। यह रोज-रोज का कष्ट, यह रोज-रोज की प्रतीक्षा क्या? धीरे-धीरे एक दिन ऐसा आता है जब भक्त और भगवान दो नहीं रह जाते एक हो जाते हैं। उस दिन फिर यह विरह-मिलन का खेल बन्द हो जाता है। महामिलन हो जाता है। कहानी है वृन्दावन के मन्दिर में कृष्ण की मूर्ति में ही मीरा समा गई। यह बात तथ्यात्मक रूप से सही हो या नहीं, लेकिन यह बात सत्य है। तथ्य भले ही न हो पर सत्य है कि भक्त अंततः भगवान में समा जाता है।

प्रेम में सब प्यारा हो जाता है

सारे जीवन के प्रति प्रेम से भरे भक्त को सब कुछ प्यारा लगता है। याद रखना, भक्ति के अलावा अन्य आध्यात्मिक धाराएं किसी न किसी रूप में जीवन से दुश्मनी ठानती हैं। वे कहती हैं घर-गृहस्थी त्यागो, पत्नी-बच्चे छोड़ो, समाज की जिम्मेवारियों से पलायन करो। और भक्त गुनगुनाता है-

बड़े अच्छे लगते हैं
ये धरती, ये नदियां,
ये रैना
और? और तुम!

ये प्रभु की अनूठी लीला, उसका अनोखा खेल, उसका अद्‌भुत संसार, उसके प्यारे लोग- जब हमें उसी से प्रेम हो गया तो उसकी कलाकृतियों से तो प्रेम होगा ही। भगोड़े संन्यासी कह रहे हैं कि चित्रकार से तो बहुत प्रेम है लेकिन इस पेन्टिंग को हम फाड़ के फेंक देंगे। यह कैसा सम्मान है चित्रकार का? चित्रकार से प्रेम का अर्थ है उसके चित्र से प्रेम। कोई किसी कवि से कहे कि मैं तो आपका आदर करता हूँ, आपके प्रति समर्पित हूँ, लेकिन उसकी कविता की किताबों में आग लगाने को तत्पर हो और धमकी दे कि खबरदार जो हमें

कविताएं सुनाईं... और कान बंद कर पद्मासन में बैठ गया! हम क्या कहेंगे... इसे कवि से प्रेम है! कवि से प्रेम का अर्थ हुआ उसकी रचना से प्रेम। परमात्मा की यह सृष्टि है। अगर उस सृष्टा से प्रेम करना है तो उसका केवल एक ही उपाय है– इस सृष्टि के प्रेम में पड़ जाओ। स्वामी योग प्रीतम का यह प्यारा गीत सुनो–

ये प्रभु की हवाएं जहाँ भी बहाएं;
खुशी से बहेंगे विहंसते रहेंगे।
ये सांझ और सकारे, ये प्रभु के नजारे,
ये काले अंधेरे, ये गोरे उजाले;
बहुत प्यारे-प्यारे ये प्रभु के इशारे,
हम उसके ही रंगों में खिलते रहेंगे।
ये इबादत बहारें ये रस की फुहारें
ये प्रभु का है आलम, ये प्रभु की पुकारें,
हमें हैं बुलाती, हमें हैं झुलाती;
हम उसकी ही धुन पर मचलते रहेंगे।
हम जिस ओर जाएं उसी उसको पाएं,
किसे याद रखें, हम किसको भुलाएं;
हम उसकी लगन में, हम उसके भजन में,
हम उसकी अगन में सुलगते रहेंगे।
हमें तो है गाने उसी के तराने,
उसी को रिझाने, उसी को मनाने;
सभी नाज उसके, सभी साज उसके,
वो जिस पर नचाए थिरकते रहेंगे।

बस यही है भक्ति एक पंक्ति में–'सारे जगत से प्रेम', क्योंकि यह उस प्यारे का खेल है, यह उसकी प्यारी रचना है। रचनाकार से प्रेम अपने आप ही हो गया।

त्यागवादी धर्म कहता है कि संसार से भागो, माया मोह में न पड़ो। भक्त कहता है कि इस माया मोह को हम और भी सुन्दर बनाएंगे। हमारे अन्दर जो प्रेम है, माना कि उसमें अशुद्धियाँ हैं, उसको हम शुद्ध साफ-सुथरा करेंगे। भागने का तो सवाल ही नहीं। इसे और खूबसूरत बनाना है, सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की ओर

ले चलना है। संसार का जरा भी इंकार नहीं, विरोध नहीं है भक्ति में, संसार का पूरा-पूरा स्वीकार है क्योंकि उस प्रभु का ही यह संसार है। उसने रचा है तो जरूर हमारे विकास के लिये सहयोगी होगा। हम इसका सम्मान करते हैं। किसी कवि ने संसार को त्यागकर गए गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा के मुख से कहलवाया है-

सखि, काश वे मुझसे कहकर जाते!
तो क्या मुझको अपनी पथ-बाधा ही पाते?
मुझको बहुत उन्होंने माना, फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना, जो वे मन में लाते।
सखि, काश वे मुझसे कहकर जाते!
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में, प्रियतम को प्राणों के पण में
हमीं भेज देती हैं रण में—क्षात्र धर्म के नाते।
सखि, काश वे मुझसे कहकर जाते!
हुआ न यह भी भाग्य अभागा, किस पर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा; रहे स्मरण आते...
सखि, काश वे मुझसे कहकर जाते!
नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते, पर इनसे जो आंसू बहते
सदय हृदय वे कैसे सहते? गए तरस ही खाते।
सखि, काश वे मुझसे कहकर जाते!
जाएं, सिद्धि वे पाएं सुख से, दुखी न हों इस जन के दुख से।
उपालंभ दूं मैं किस मुख से? आज अधिक वे भाते।
सखि, काश वे मुझसे कहकर जाते!
गए, लौट भी वे आवेंगे; कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे।
रोते प्राण उन्हें पावेंगे, पर क्या गाते-गाते?
सखि, काश वे मुझसे कहकर जाते!

भक्त त्यागी नहीं होता। जीवन का महाभोगी होता है। सारे जीवन के प्रति अहोभाव से भरा आदर—सब कुछ जब तुम्हें प्यारा लगने लगे, खुद अपने आप से भी प्रेम हो जाए तब जानना तुम भक्त हो गये।

भक्त अपने कर्मो को भी भगवान के किये हुए कर्म समझता है। मेरे द्वारा जो

हो रहा है वह उसकी मर्जी से हो रहा है। दूसरे लोग जो कर रहे हैं वे भी उसकी मर्जी से। हम सब कठपुतलियां हैं उसके हाथ में। डोरी उसके हाथ में है। वह जैसा नाच नचा रहा, हम नाच रहे हैं। भक्त अपने कर्मों का भी श्रेय स्वयं नहीं लेता। न क्रेडिट, न ब्लेम। वह कहता है मैं तो हूँ ही नहीं, मैं क्या खाक करूँगा! वह करा रहा है। नानक कहते हैं–जैसी उस एक ओंकार सतनाम कर्तापुरुष की मौज। उसके कर्म पूजा बन जाते हैं। आपने यह मधुर गीत सुना है न–'ओशो मैं हूं तेरी बांसुरी, मेरा मुझमें कुछ भी नहीं!'

प्रेम के रूप अनेक

मैं का क्षुद्रभाव मिटता है तो विराट की उपस्थिति का एहसास होने लगता है, असीम ऊर्जा भीतर-बाहर महसूस होने लगती है। पदार्थ स्थूल और शक्ति परमात्मा का सूक्ष्म रूप है। उपस्थिति का एहसास कई ढंगों से हो सकता है। उसका एक ढंग ऊर्जा का अनुभव भी है। ऊर्जा के संग क्रमशः अद्वैतभाव घटित होने लगता है। ऊर्जा के महासागर में खुद का होना एक लहर की तरह दिखने लगता है।

जीवन मात्र के प्रति सम्मान, सेवाभाव, भाईचारा; ये सब प्रेम के ही विविध रूप हैं। प्रभु-स्मरण, सिमरन, हरि-चर्चा आदि को भी प्रेमभाव से जुड़ा हुआ जानें। याद हम किसकी करते हैं? जिससे हमारा लगाव हो। प्रेम के ही अन्य रूप हैं–श्रद्धा, सत्संग, गुरु-मिलन, गरु-आज्ञा शिरोधार्य करना, शिष्यत्व, समर्पणभाव, उसकी रजा में राजी होना, कृपाभाव और असहायभाव भी। जहाँ हमारा अहंकार असहाय महसूस करता है वहीं हमें पता चलता है कि सब कुछ उसकी कृपा से हो रहा है; अहम् का भरोसा हटता है, ब्रह्म पर भरोसा आता है। रजामन्दी तीन चरणों में घटती है–पहले गुरु के साथ राजी होना, फिर साधक-संघ के साथ, फिर सारे जीवन यानी सर्व के साथ रजामंद होना। बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। शरणभाव निर-अहंकार में डूबने का उपाय है। बुद्ध और महावीर ने ईश्वर को इंकार कर दिया किंतु शरणभाव की महत्ता को स्वीकारा। महावीर ने पंच नमोकार सूत्र अपने शिष्यों को शरणभाव सिखाने के लिए दिया-

नमो अरिहंताणं। नमो सिद्धाणं।
नमो आयरियाणं। नमो उवज्झायाणं।
नमो लोए सव्वसाहूणं।
एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपाप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

अर्थात् अरिहंतों को नमस्कार। सिद्धों को नमस्कार। आचार्यों को नमस्कार। उपाध्यायों को नमस्कार। लोक संसार में सर्व साधुओं को नमस्कार। ये पांच नमस्कार सर्वपापों के नाशक हैं, और सर्व मंगलों में प्रथम मंगल रूप है। ओशो इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं–'नमोकार को जैन परंपरा ने महामंत्र कहा है। पृथ्वी पर दस-पांच ऐसे मंत्र हैं जो नमोकार की हैसियत के हैं। असल में प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र अनिवार्य है, क्योंकि उसके इर्द-गिर्द ही उसकी सारी व्यवस्था, सारा भवन निर्मित होता है।' इसका अर्थ हुआ कि शरण-भाव और निर-अहंकार-भाव ईश्वर से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। झुको! प्राणों में प्रार्थना जागे, उधार और बासी नहीं, तोता रटंत नहीं; प्राणों से उपजे।

इक प्रार्थना जगी है, इक गीत गा लिया है;
इक वंदना हुई है, मनमीत पा लिया है।
इक नृत्य चल रहा है, संगीत चल रहा है;
महफिल सजी हुई है, इक दीप जल रहा है।
उत्सव मना रहे हम, इक राग पल रहा है;
ये हैं वसंत के दिन, इक फाग चल रहा है।
अनमोल-से दिवस हैं, आनंद में निमज्जित;
यह अन्तरंग क्षण है, आलोक से सुसज्जित
सत्संग चल रहा है, कुछ बात हो रही है;
रस रंग में भिगाती बरसात हो रही है।
अब प्रार्थना जगी है, इक दीप जल गया है;
अब अर्चना हुई है, इक फूल खिल गया है।
ये धन्यता के पल हैं, ओशो मिल गए हैं;
रसधार बह गई है, हाँ प्यार खिल गया है।

गुरु से मिलना, उनके चरणों में झुकना महासौभाग्य की घटना है। शरण-भाव से गौणीभक्ति आरंभ होती है और पराभक्ति में लीनता, एकता, अहंशून्यता, अभिन्नता, मैं-तू के मिटने, खुदी के पिघलने, अद्वैतभाव में डूबने तक पहुंचती है। फिर परिणामस्वरूप धन्यवाद-भाव, अहोभाव और सहजता फलित होती है। कबीर कहते हैं–'साधो सहज समाधि भली'।

भक्ति के विविध आयाम

तुलसी ने नवधा भक्ति में अन्तिम बात बताई है सहजता। नवधा भक्ति में उन्होंने नौ बिन्दु गिनाए हैं। पहला सत्संग, दूसरा कथा श्रवण, तीसरा गुरु-भक्ति, चौथा सगुण उपासना, पांचवां नाम श्रवण या ओंकार श्रवण, छटवां वैराग्यभाव, सातवां कृपाभाव, आठवां स्वीकार या कहें समर्पणभाव और नौवां सहजता का भाव। सहजता की परिभाषा उन्होंने दी है- जहाँ हर्ष या शोक न हो। इसे हम दूसरा शब्द भी दे सकते हैं, निर्द्वंद्वता या समता-भाव। समता यानी जहाँ चीजों को हम समान देखने लगें। अब किसी चीज में हमें हर्ष नहीं होता और किसी चीज में शोक भी नहीं होता। सहजता भक्ति का शिखर है। ओशोधारा के चौदह समाधि कार्यक्रमों की श्रृंखला में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है सहज समाधि। सफलता और असफलता, मान और अपमान, सुख और दुख, ये जब बराबर दिखने लगें, उस प्रभु का ही सारा खेल नजर आने लगे, तब सही मायने में कोई भक्त बनता है। एक उदाहरण से समझें-

आप एक फिल्म देखने जाते हैं उसमें हीरो अच्छा काम कर रहा है, विलेन बुरा काम कर रहा है। लेकिन जब आप फिल्म देखकर निकलते हैं क्या आपके मन में कोई आक्रोश होता है विलेन के प्रति? नहीं! अगर उसने अच्छे से अपना रोल निभाया है तो आप उसकी भी तारीफ करते हैं। आप जानते हैं फिल्म का डायरेक्टर तो एक ही है, कहानीकार एक ही है। उसी ने तो हीरो की कथा रची, विलेन को निर्देश दिए कि क्या और कैसे करना है। वरना कहानी कैसे आगे बढ़ती? अगर विलेन होता ही नहीं तो बस एक-दो मिनट में हीरो-हीरोइन का मिलन हो जाता, शहनाई बज जाती! घोषणा हो जाती कि चलो, अपने-अपने घर जाओ। तीन घन्टे आप क्या करते टॉकिज में? कहानी का पूरा मजा विलेन की

वजह से है। एक बार हमें यह ख्याल में आ जाये कि परमात्मा की इस रचना में अच्छा-बुरा जैसा कुछ नहीं है, सब उस विराट नाटक का हिस्सा है, एक लीला है; तब हमारे भीतर समताभाव पैदा होता है। तब हम समदृष्टि से घटनाओं को देखने लगते हैं। तब फूल और कांटे बराबर हो जाते हैं।

ऋषि शांडिल्य समझाने हेतु भक्ति के दो खंड करते हैं—गौणीभक्ति एवं पराभक्ति। अन्य शब्दों में तल्लीनता+आत्मस्मरण का नाम गौणीभक्ति एवं संलीनता+आत्मस्मरण का नाम पराभक्ति है। गौणी में बाह्यदृश्य+स्वबोध, तथा परा में अंतर्दृश्य+स्वबोध बना रहता है। स्वबोध एवं आत्मस्मरण ध्यानियों के शब्द हैं। भक्तों की भाषा में हरिस्मरण, प्रभु-सिमरन, ज़िक्रे-खुदा या 'उस' का ख्याल कहना ज्यादा उचित होगा।

महर्षि शांडिल्य के सूत्रों को समझाते हुए ओशो 'अथातो भक्ति जिज्ञासा' नामक प्रवचनमाला में कहते हैं कि प्रीति के चार रूप हैं। पहला स्नेह, दूसरा प्रेम, तीसरा श्रद्धा और चौथा भक्ति। चार प्रकार की प्रीतियां समझ लो तो भक्ति समझ में आ जाएगी-

1. **स्नेह या करुणा**—दयाभाव, सहयोग, सेवा, मंगलकामना, बच्चों के प्रति एवं अपने से छोटों के प्रति लगाव। शिष्य के प्रति प्रीति। विद्यार्थी से प्रेम।
2. **मैत्री या प्रेम**—दोस्ती, भाईचारा, बराबर वालों के प्रति लगाव।
3. **श्रद्धा, सम्मान, सगुण या गौणी भक्ति**—दर्शन, साधुसंग, सत्संग, गुरु-मिलन, शिष्यत्व, असहायभाव, कृपानुभव, अहोभाव, देवी-देवताओं की पूजा, अपने से बड़ों के प्रति लगाव। स्मरण, हरिचर्चा, विरह।

सुनो गुरु नानकदेव जी का यह प्यारा शबद-

गुरु मेरी पूजा, गुरु गोविंद, गुरु मेरा पार ब्रह्म, गुरु भगवंत।
गुरु मेरा देवउ, अलख अभेउ, सर्व पूज शरण गुरु सेउ॥
गुरु का दर्शन देख-देख जीवां, गुरु के चरण धोई धोई पीवां।
गुरु बिन अवर नहीं मैं ठांउ, अनदिन जपहुं गुरु गुरु नाउं।
गुरु मेरा ज्ञान, गुरु हृदय ध्यान, गुरु गोपाल, सुरत भगवान।
ऐसे गुरु को बल बल जाइए, आप मुकत मोहे तारे।

गुरु की सरण रहो कर जोड़, गुरु बिना मैं नाहीं होर।
गुरु बहुती तारे भव पारे, गुरु सेवा जम ते छुटकारे।
अंधकार में गुरु-मंत्र उजारा, गुरु के संग सगल निस्तारा।
ना मैं सोनी, ना गुण पलै, मैं किस दा मान करेंसा।
चारों चुकां मेरीआं चिकड़ बरीआं, मैं केड़ी केड़ी मल दोसा।
इक साबुन थोड़ा ओते मैल घनेरी, मैं केड़े केड़े कपड़े धोसां।
बुल्लेशाह मुर्शिद जे मैं ना मिलिओ मैं बैठि किनारे रोंसा।
गुरु पूरा पाइए वड़भागी गुरु की सेवा दुख ना लागै।
गुरु का शब्द न मेटे कोई, गुरु नानक नानक हरि सोई।

4. **भक्ति या पराभक्ति**–गहन स्वीकारभाव, राजी हूं तेरी रजा में, प्रभु की उपस्थिति या विराट ऊर्जा का अहसास, सर्व के प्रति लगाव। संक्षेप में कहें तो अस्तित्व के महासंगीत अर्थात् ओंकार से प्रीति पराभक्ति है। अंतत: ओंकार से एकात्मीयता घटती है। लीनता, एकता, अभिन्नता, अद्वैत की घटना इसका शिखर है।

यहाँ भक्तिप्रज्ञा शिविर में हम सात मुख्य बिंदुओं पर बात करेंगे; और सिर्फ चर्चा ही नहीं उस भावदशा में जीने के प्रयोग भी करेंगे। संक्षेप में-

1. सहजता या समता भाव–न हर्ष न शोक, सुख-दुख में समानता का भाव। तेरे फूलों से भी प्यार तेरे कांटों से भी प्यार, जो भी देना चाहे दे दे सरकार, दुनिया के पालनहार।
2. निरबैरता, अहिंसा या प्रेम भाव–'न काहू से दोस्ती न काहू से बैर' इससे भी ऊपर है 'प्रेम ही परमात्मा है'।
3. पूजाभाव से किए पुरुषार्थ–अकर्म यानी अकर्ता भाव से उत्पन्न सेवा भाव या करुणा–ओशो मैं हूं तेरी बांसुरी, मेरा मुझ में कुछ भी नहीं।
4. अहोभाव, धन्यता बोध, मुदिता या प्रफुल्लता–व्यक्ति से लेकर समष्टि तक।
5. शील, विनम्रता, प्रार्थनाभाव–प्रभु की जीती-जागती मूर्तियों से संवाद है प्रार्थना।
6. श्रद्धाभाव–गुरु पर, स्वयं पर, फिर संपूर्ण अस्तित्व पर भरोसा,

सत्यं-शिवं-सुंदरम् पर परिकल्पनात्मक विश्वास, हाइपोथेटिकल ट्रस्ट। प्रयोगात्मक व वैज्ञानिक ढंग से, अनुमान से अनुभव तक की यात्रा।

7. समर्पण, स्वीकारभाव–ये प्रभु की हवाएं जहाँ भी बहाएं...! तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा, त्वीदयं वस्तु गोविंदं तुभ्यमेव समर्पयेत।

गौतम बुद्ध की भाषा में इस 'तथाता भाव' के सात सोपान समझ लें–

- अनुकूल परिस्थितियों में प्रसन्नता।
- प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रसन्नता।
- अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में भेदभाव नहीं, सुख-दुख में समताभाव, सब संयुक्त दिखना, बहिर्द्वंद्व समाप्त।
- स्वयं के शरीर का स्वीकार–स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य, सौंदर्य, कुरूपता, जन्म-मृत्यु।
- अपने मन का स्वीकार–विचार, कल्पनाएं, स्मृतियां, स्वपनादि।
- हृदय की भावनाओं का स्वीकार–सद्भावनाओं व दुर्भावनाओं में अंतर्द्वंद्व समाप्त।
- सर्व-स्वीकार–भूत, वर्तमान व अज्ञात ही नहीं अज्ञेय भविष्य तक का स्वीकार।

अंततः स्वीकार का ज्ञान भी शेष नहीं रहता। वही भक्ति की पराकाष्ठा है।

अंतिम बात-इस चर्चा से तो केवल मस्तिष्क की समझ विकसित हुई, जबकि वास्तविक भक्ति तो हृदय की उड़ान है। बौद्धिक समझ जरूरी है, पर्याप्त नहीं। इसलिए अभी हम सब मा ओशो प्रियाजी के निर्देशन में 'ओशो कीर्तन संध्या' में शामिल होंगे, और भक्ति का स्वाद चखकर विदा होंगे।

हरि ओम् तत्सत्!

कीर्तन से दिव्य संगीत तक

मा ओशो प्रियाजी ने समझाया- सभी सद्गुरु देह से विदा लेने के पूर्व कोई ऐसी विधि देकर जाते हैं जिसके द्वारा उनके शिष्य बाद में भी उनसे जुड़ सकें। हमारे परमगुरु ओशो ने 'व्हाइट रोब ब्रदरहुड' नामक विधि हमें दी जिसे हिन्दी में 'ओशो कीर्तन संध्या' पुकारते हैं। कीर्तन प्रभु का यशोगान है, भक्ति-योग का सोपान है। कीर्तन उत्सव की अभिव्यक्ति है, अहोभाव का प्रतीक है।

पहली बार ओशो ने कीर्तन को ध्यान का रूप दिया, अंतर्यात्रा की विधि एवं आत्म-स्मरण का साधन बनाया। यहाँ कीर्तन में प्रयुक्त 'राम' और 'कृष्ण' व्यक्तिवाची नहीं, परमात्मा के प्रतीक हैं। परमात्मा पूरे ब्रह्मांड में दिव्य-संगीत के रूप में व्याप्त है–संतो ने उसे ही राम-नाम कहा है, कृष्ण की बांसुरी कहा है। कीर्तन ध्यान करने का सबसे उपयुक्त समय शाम सात बजे है। स्नान करके श्वेत वस्त्र एवं माला पहनकर, हम गुरु वंदना से आरंभ करेंगे। अपने दोनों हाथ सीने पर रखकर हृदयपूर्वक पुकार एवं प्रार्थना से भरेंगे। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा गया है, साक्षात् परमात्मा कहा गया है। परमगुरु ओशो को नमन कर हम कीर्तन में डूबेंगे। आंनद और अहोभाव से भरकर 'हरे राम हरे रामा, रामा रामा हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा हरे हरे' गाएंगे, झूमेंगे, नाचेंगे।

परमसुख की वर्षा होगी। अहंकार की छतरी गिर जाने दें। भक्त के भीतर क्या होता है, भक्त होकर ही पता चलता है। मीरा ने गाया है: 'घायल की गति घायल जाने और न जाने कोई।' थोड़ी देर के लिए अपने ज्ञान को, शिक्षा को, संस्कार को, अभिमान को उतार कर रख दें। छोटे बच्चे जैसे सरल हो जाएं। चाहें तो आंख बंद कर सकते हैं, अथवा खुली भी रख सकते हैं। यह प्यारा जीवन हमें मिला, ध्यान में डूबने का सौभाग्य मिला, इस सुंदर उपहार के लिए धन्यवाद से भरें। धीरे-धीरे अहोभाव में जीने की कला सीखें। अनुग्रह की भावदशा ही सच्ची भक्ति है। प्रार्थना में मांगना मत, जो मिला है उसके लिए आभार व्यक्त करना।

अंत में शिथिल होकर भाव करें कि शांति ही शांति है। परम मौन छाया है, अद्भुत विश्रांति है। अकारण आनंद की वर्षा हो रही है। पूरे ब्रह्मांड में दिव्य-संगीत गूंज रहा है। डूबते जाएं। दिव्य स्वर लहरियों में डूबते जाएं। धन्यवाद और नमस्कार।

प्रेमं शरणं गच्छामि। आनन्दं शरणं गच्छामि।

(नोट–मा प्रिया द्वारा कराए आठ कीर्तन, एम.पी.थ्री. में उपलब्ध हैं)

नए साधकों के लिए कार्यक्रमों में आमंत्रण

1. ध्यान – आधुनिक फोरम स्टाइल से चलने वाला छः दिवसीय शिविर। शरीर, मन व हृदय का शुद्धिकरण। चित्त शक्तियों के रूपांतरण का अनूठा प्रयोग। दुख, तनाव, क्रोध, अशांति आदि नकारात्मक भावनाओं का विसर्जन। प्रेमपूर्ण व आनंदपूर्ण जीने की कला का प्रशिक्षण। कर्मयोग, तंत्र, हठयोग, भक्ति, ज्ञानयोग, राजयोग एवं सांख्ययोग के सात द्वारों से साक्षी के मंदिर में प्रवेश। चेतना के आकाश में गूंजते परमात्मा के संगीत यानि 'ओंकार' का ज्ञान।

2. सम्मोहन प्रज्ञा– तीन दिवसीय शिविर में कल्पवृक्ष रूपी अपने अवचेतन मन की शक्ति से परिचय। संगीतमय सुझावों द्वारा 'सेल्फ–हिप्नोसिस' की गहराई में पहुंचकर स्वयं की सोई प्रतिभा और 'विल–पावर' का जागरण। मनचाहे व्यक्तित्व का निर्माण। जीवन के सभी आयामों में सफलता की कुंजी प्राप्त।

3. महाजीवन प्रज्ञा– तीन दिवसीय शिविर में पहले बचपन की, फिर क्रमशः मां के गर्भ में होने की, एवं पिछले जन्मों की स्मृतियों में यात्रा। दो जन्मों के बीच की अवस्था का ज्ञान। अपने 'स्पिरिट गाइड' से मुलाकात। मृत्यु–भय से मुक्ति। कर्मबंध से छुटकारा। जीवन का उद्देश्य स्पष्ट तथा आगे का सफर आसान!

जानकारी हेतु संपर्क–

+91-7988229565, +91-7988969660, +91-7015800931

Website:www.oshofragrance.org
E-mail: oshofragrance7@gmail.com

प्रेम क्या है?- विरला जाने कोय!

हम जब भी भाव-विह्वल होते हैं, हम उसे ही अपना स्वभाव मानकर उसमें जीने लगते हैं, फिर वो प्रेम हो, गुस्सा हो या नफरत हो। लेकिन भाव-विह्वलता का कोई मूल्य नहीं है। यह सिर्फ हमारी भावुकता को दर्शाता है। हम किसी भाव में अभिभूत होकर जो भी कार्य करते हैं उसका नतीजा गलत होता है। भाव-विह्वलता एक अंधापन है जो कभी सही मार्ग नहीं चुन सकता। अगर हम प्रेम में अभिभूत होकर भी कोई कार्य करते हैं, वह भी गलत ही होगा। भाव-विह्वलता एक असम्यक स्थिति है। प्रेम भावुकता की अभिव्यक्ति नहीं है। प्रेम एक सागर है और भाव उसकी लहरों की तरह हैं, जो आती जाती रहती हैं। लहरें कभी सागर की अभिव्यक्ति नहीं हो सकतीं। भाव क्षणभंगुर होते हैं और भावुकता अपने पीछे खालीपन, बिखराव, उदासी और दुःख छोड़ जाती है।

हम या तो दिमाग से प्रेम करते हैं या दिल से। जैसे कि हम अपनी वस्तुओं को बुद्धि से और संबंधों को हृदय से चाहते हैं। लेकिन यह प्रेम बदलाव चाहता है क्योंकि हम एक ही घर से, एक ही पति से, एक ही पत्नी से ऊब जाते हैं। यह प्रेम संवेदनशीलता को कम करता है, आनंद की संभावना को कम करता है। क्रमशः आपकी हँसी खो जाती है, और जीवन एक कार्य जैसा लगने लगता है। बुद्धि का प्रेम आसान है, क्योंकि आप वस्तुओं को बदल सकते है और वस्तुएँ बदले जाने पर कोई विरोध नहीं करती, इंसानों की तरह आपसे झगड़ा नहीं करतीं, गुस्सा नहीं होतीं। इसीलिए आज हम इंसानों की बजाए वस्तुओं से ज्यादा प्रेम करने लगे हैं। पश्चिम में लोग, पालतू जानवरों से अधिक प्रेम करने लगे हैं।

वस्तुतः प्रेम हमारे होने की अभिव्यक्ति है, केवल हमारे भावों का संग्रह नहीं। प्रेम अभिभूत होना नहीं है, बल्कि एक अभूतपूर्व प्रज्ञा, संवेदना और होशपूर्ण अहसास है। लेकिन ऐसा प्रेम शायद ही कभी होता है, क्योंकि हम कभी अपने स्वयं में स्थित नहीं हो पाते। हमें भावनाओं की जकड़ से बाहर निकलना होगा और स्वयं तक जाने का मार्ग ढूँढना होगा। भावनाएँ इन अर्थों में खतरनाक हैं कि वे हमें अभिभूत कर देती हैं और हम मदहोश हो जाते हैं।

होशपूर्वक होने पर हमें अभिभूत करने वाली चीजें विदा होने लगती हैं। जब हम होश में और स्वयं में होते हैं तो बहुत स्वच्छ और निर्मल होते हैं और किसी भावुकता में नहीं बहते, चाहे वह प्रेम की भावनाएँ हों, गुस्से की या किसी और तरह की।

-ओशो के प्रवचन (8 मार्च 1988) से संकलित

ध्यान विधि

प्रेम में श्वास लेना

प्रेम सदा नया होता है। वह कभी पुराना नहीं होता क्योंकि वह कुछ इकट्ठा नहीं करता, कुछ संगृहीत नहीं करता। उसके लिए कोई अतीत नहीं है, वह हमेशा ताजा होता है, उतना ही ताजा जितने कि ओस कण। वह क्षण-क्षण जीता है, आणविक होता है। उसका कोई सातत्य नहीं होता, कोई परंपरा नहीं होती। प्रति पल मरता है और प्रति पल पुनः जन्मता है। वह श्वास की भांति होता है- तुम श्वास लेते हो, श्वास छोड़ते हो; फिर श्वास लेते हो, फिर छोड़ते हो। तुम उसे भीतर सम्हाल कर नहीं रखते।

यदि तुम श्वास को सम्हाल कर रखोगे, तुम मर जाओगे क्योंकि वह बासी हो जाएगी, मुर्दा हो जाएगी। वह अपनी जीवन-शक्ति, जीवन की गुणवत्ता खो देगी। प्रेम की भी वही स्थिति होती है; वह सांस लेता है, प्रति पल स्वयं को नया करता है। तो जब कोई प्रेम में रुक जाता है और सांस लेना बंद करता है, तो जीवन का समूचा अर्थ खो जाता है। और लोगों के साथ यही हो रहा है। मन इतना हावी हो जाता है कि वह हृदय को प्रभावित कर देता है और हृदय को भी मालकियत जताने को मजबूर करता है। हृदय कोई मालकियत नहीं जानता लेकिन मन उसे प्रदूषित करता है, विषाक्त करता है।

इसे ख्याल में रखो, अस्तित्व के प्रेम में रहो। और प्रेम श्वास-उच्छ्वास की तरह रहे। श्वास लो, छोड़ो, लेकिन ऐसे जैसे प्रेम अंदर आ रहा है और बाहर जा रहा है। धीरे-धीरे हर श्वास के साथ तुम्हें प्रेम का जादू निर्मित करना है। इसे ध्यान बनाओः जब तुम श्वास छोड़ोगे, ऐसे महसूस करो कि तुम अपना प्रेम अस्तित्व में उंडेल रहे हो। जब तुम सांस ले रहे हो तो अस्तित्व अपना प्रेम तुममें डाल रहा है। और शीघ्र ही तुम देखोगे कि तुम्हारी श्वास की गुणवत्ता बदल रही है, फिर वह बिलकुल अलग ही हो जाती है जैसा कि पहले तुमने कभी नहीं जाना था। इसीलिए भारत में हम उसे प्राण या जीवन कहते हैं सिर्फ श्वास नहीं, वह सिर्फ आक्सिजन नहीं है। वह कुछ और भी है, स्वयं जीवन ही है।

-ओशो, दि ओपन डोर-13 से संकलित